विषय अनुक्रम

प्रकाशक :
मंत्री, श्री जवाहर साहित्य समिति
भीनासर (बीकानेर) राजस्थान

द्वितीय संस्करण ११०
जनवरी, १९७५

मूल्य तीन रुपया

मुद्रक :
जैन आर्ट प्रेस
(श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित)
समता भवन, बीकानेर (राजस्थान)

यद्यपि आजकल कागज, छपाई आदि का खर्च काफी बढ गया है और समय को देखते हुए भविष्य में और भी बढते जाने की सम्भावना है, लेकिन समिति अपनी निर्धारित नीति के अनुसार लागत मूल्य पर ही साहित्य प्रकाशन का कार्य कर रही है ।

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ और उसके द्वारा संचालित जैन आर्ट प्रेस का प्रकाशन-कार्य में पूरा सहयोग प्राप्त है, जिससे समिति द्वारा अनेक अप्राप्य किरणावलियों के द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और हो रहे हैं । एतदर्थ समिति की ओर से सघ को हार्दिक धन्यवाद है ।

निवेदक

चम्पालाल बांठिया
मंत्री—श्री जवाहर साहित्य समिति,
भीनासर (बीकानेर), राजस्थान

श्री जवाहर

स्मारक

प्रथम

यह कहा जा सकता है कि जब प्यास लगी हो तब ठण्डा पानी और भूख लगने पर रोटी मिल जाने से शांति मिलती है और यह प्रत्यक्ष अनुभूत बात भी है। वैसी हालत में यह कैसे कहा जा सकता है कि संसार के किसी भी पदार्थ में शान्ति नही है ? इसका उत्तर यह है कि सयाने लोग शान्ति उसी को कहते हैं, जिसमें अशान्ति का लवलेश भी न हो। जो शान्ति एकान्तिक और आत्यन्तिक है, वही सच्ची शान्ति है। जिस पदार्थ में एकान्तिक और आत्यतिक शाति नहीं है, वह शान्तिदायक नही कहा जा सकता। पदार्थों मे शान्ति का आभास होता है, किन्तु शान्ति का वास्तविक स्रोत अन्य ही है। उदाहरण के लिए समझ लीजिये कि किसी को प्यास लगी है और उसने पानी पी लिया है। यदि उसी व्यक्ति को उसी समय पुनः पानी पीने के लिए कहा जाय तो क्या वह पानी पीयेगा ? नही पीयेगा। यदि पानी में शान्ति है तो वह व्यक्ति पुनः पुनः पानी पीने से क्यों इन्कार करता है ? दूसरी बात–एक बार पानी पीने से उस समय उसकी प्यास बुझ गई थी, उस समय उसने पानी में शान्ति का अनुभव किया था किन्तु दो एक घण्टा बीत जाने पर वह फिर पानी पीता है या नही ? फिर पानी पीने का क्या कारण है ? यही कि उस समय पानी पीने से उस समय की प्यास बुझ गई थी लेकिन कायम के लिए उस पानी से प्यास न बुझी थी। कल रोटी खाई थी। क्या आज पुनः खानी पड़ेगी ? यदि रोटी से भूख मिट जाती है तो पुनः क्यों खानी पड़ती है ! इससे ज्ञात होता है कि रोटी पानी आदि भौतिक पदार्थों में सुख नही है किन्तु सुख का आभास मात्र है। शान्ति नही है किन्तु शान्ति का आभास है। संसार के किसी भी पदार्थ मे एकान्तिक

विषय अनुक्रम

आत्मा शरीर में निवास करता है। अभी आत्मा का काम शरीर की सहायता से चलता है। अभी आत्मा को अतींद्रिय शक्ति प्राप्त नहीं हुई है। इन्द्रियों की सहायता से ही आत्मा जानना, सुनना, देखना आदि क्रियाए करता है। आत्मा को अतीन्द्रिय शक्ति प्राप्त हो जाय तब की बात अलग है। किन्तु अभी तो अतीन्द्रिय शक्ति न होने से शरीर, आख, कान, नाक, जिह्वा से आत्मा सहायता लेकर अपना निर्वाह करता है।

इस प्रकार यह भौतिक शरीर आत्मा के लिए सहायक है। किन्तु इस भौतिक शरीर के पीछे अनेक भौतिक अशांतिया लगी हुई हैं। इन भौतिक अशातियो को मिटाने के लिए भी शान्ति का उच्चारण किया जाता है और परमात्मा से शान्ति चाही जाती है। इस शरीर को अनेक रोग, दु.ख और शस्त्र-घात आदि कारणों से अशान्ति रहती है। शान्ति के उच्चारण द्वारा इन सब कारणों को मिटाकर अशान्ति मिटाना इष्ट है।

यह शंका की जा सकती है कि ये आधिभौतिक अर्थात् शारीरिक कष्ट तो अन्य उपायो के द्वारा भी मिटाये जा सकते हैं। जैसे रोग वैद्यराज की शरण लेने से और शस्त्राघात का भय किसी वीर योद्धा की शरण में जाने से। फिर इन दु खों से बचने के लिए परमात्मा की शरण मे जाने और उससे शान्ति की चाहना करने की क्या आवश्यकता है? अन्य स्थूल उपायों के होते हुए परमात्मा तक पुकार पहुंचाने की क्या जरूरत है?

इस शंका का समाधान सच्ची शान्ति का मार्ग जानने और अनुभव करने वाले ज्ञानीजन इस प्रकार करते हैं कि यदि वैद्य या वीरयोद्धा की सहायता ली जायगी और उस

प्रकाशक के दो शब्द

महान् क्रान्तिकारी, युगदृष्टा, युगप्रवर्तक जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी म. सा. के जनहितकारी व्याख्यानो का जवाहर किरणावली के रूप मे प्रकाशन जैन-साहित्य मे अपना विशेष स्थान रखता है। लगभग सभी किरणावलियां कई-कई बार प्रकाशित की जा चुकी हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि पाठको ने इन्हे कितना अपनाया व सराहा है। सीधी सरल भाषा मे जीवन पर चमत्कारिक असर करने वाले मार्मिक प्रवचनों का यह दिव्य-संग्रह पाठको की माग पर द्वितीय सस्करण के रूप में प्रकाशित करके हम आत्मिक आनन्द का अनुभव कर रहे हैं।

धर्मनिष्ठ सुश्राविका बहिन श्री राजकुंवरबाई मालू, बीकानेर ने श्री जवाहर साहित्य समिति को साहित्य प्रकाशन के धनराशि

हुंचाने का विचार किया करते थे। यही कारण है कि
नके यहाँ साक्षात् शांति के अवतार भगवान् शातिनाथ का
न्म हुआ था।

महाराजा विश्वसेन के विचारों पर आप लोग भी गौर
ीजिये। आप शान्ति-दायक पुत्र चाहते हैं या अशान्ति-
ायक ? चाहते तो होंगे आप भी शान्तिदायक पुत्र ही। शाति-
ायक पुत्र प्राप्त करने की इच्छा वालों को स्वयं कैसा बनना
ाहिए ? दूसरों को शान्ति प्रदान करने वाले या दूसरों
ी शान्ति में अशान्ति उत्पन्न करने वाले ? यदि अशान्ति-
ायक बनोगे तो पुत्र भी अशान्तिदायक ही उत्पन्न होगा।
ैसी बेल होती है, उसका फल भी वैसा ही होता है।
'बोये पेड बबूल के आम कहा ते होय" ?

एक आदमी दूसरे देश में गया। उसके देश में इन्द्रा-
ण का फल नही होता था। अतः उसने कभी वह फल देखा
ा था। नये देश में इन्द्रायण का फल देख कर, वह बहुत
सन्न हुआ। प्रशंसा करने लगा कि यह कैसा सुन्दर देश
। यहां जमीन पर पड़ी हुई बेल में ही ऐसे सुन्दर फल
गते हैं। मेरे देश में तो ऊंचे वृक्ष पर ही फल लगते हैं। उस
क्त उसे भूख लग रही थी। अतः एक फल तोडकर खाया।
िन्तु फल उसे कडुआ लगा। वह थू थू करता हुआ सोचने
ा कि इतने सुन्दर फल में यह कडुआपन कहां से आ
? यह सोचकर कि देखूं फल कडुआ है पर पत्ते कैसे
उसने पत्ते चखे। पत्ते भी कडुए निकले। फिर उसने
चखा। तो वह भी कडुवा मालूम हुआ। अन्त में
उस बेल का मूल (जड़) चखा। बड़े दुःख के साथ उसने

यद्यपि आजकल कागज, छपाई आदि का खर्च काफी बढ गया है और समय को देखते हुए भविष्य में और भी बढते जाने की सम्भावना है, लेकिन समिति अपनी निर्धारित नीति के अनुसार लागत मूल्य पर ही साहित्य प्रकाशन का कार्य कर रही है।

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ और उसके द्वारा संचालित जैन आर्ट प्रेस का प्रकाशन-कार्य में पूरा सहयोग प्राप्त है, जिससे समिति द्वारा अनेक अप्राप्य किरणावलियों के द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और हो रहे हैं। एतदर्थ समिति की ओर से सघ को हार्दिक धन्यवाद है।

निवेदक

चम्पालाल बांठिया

मंत्री—श्री जवाहर साहित्य समिति,
भीनासर (बीकानेर), राजस्थान

चाहिए कि जिससे प्रजा की रक्षा हो और उसे शान्ति प्राप्त हो। यदि मेरे शरीर से यह कार्य न हो सके तो फिर इस शरीर का धारण करना ही व्यर्थ है। मैं निश्चय करता हूँ कि अब प्रजा में कोई नया रोगी न होगा और जो रोगी हैं, वे जब तक अच्छे न हो जायगे तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण न करूंगा।

महाराजा विश्वसेन ने इस प्रकार सत्याग्रह या अभिग्रह किया, वह अपने निजी स्वार्थ या हित के लिये नही किन्तु जनता के हित के लिए किया था। जनहित के लिए इस प्रकार का दृढ निश्चय करके महाराजा परमात्मा के ध्यान में बैठ गये। ध्यान मे यह विचारने लगे कि मेरे किस पाप के कारण यह महामारी उपस्थित हुई है और प्रजा मरने लगी है ? मेरी किस कमी या असावधानी के कारण प्रजा को यह दुःख सहन करना पड रहा है ?

जो अपने दुःख को तो दुःख समझता है किन्तु दूसरों के दुःख को महसूस नही करता, वह धर्म का अधिकारी नहीं हो सकता। वस्तुतः धर्म का अधिकारी वह है, जो अपने दुःखों की चिन्ता न करे किन्तु दूसरो के दुःखो को दूर करने की कोशिश करे। दूसरो को सुखी देखकर प्रसन्न हो और दुःखी देखकर दुःखी हो, वही सच्चा धर्माधिकारी है। यदि आप धर्मात्मा बनने की ख्वाहिश रखते हैं तो यह निश्चय करिये कि हे दीनानाथ ! हम हमारा दुःख सहन कर लेंगे किन्तु अज्ञानी लोग जो कि दुःख से घबड़ाते हैं, उसको सहन न करेंगे। उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न करेंगे। "अत्त-समं मनिज्जे छप्पि कायं" अर्थात् पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और चलते फिरते त्रस जीव इन छः काया के

9 : वास्तविक शान्ति

"श्री शान्ति जिनेश्वर सायब सोलवॉ ....

यह भगवान शान्तिनाथ की प्रार्थना है। भक्त भगवान् से क्या चाहता है ? यह कि हे प्रभो ! तू शान्ति का सागर है, तू स्वयं शान्ति का स्वरूप है, तेरे मे शान्ति का भण्डार भरा है, मैं अशान्त हू (आशा और तृष्णा के कारण) मुझे शान्ति की आवश्यकता है, अत. मेरे शान्ति-रहित हृदय को शान्ति प्रदान कर।

जिसको शान्ति की जरूरत होती है, जिसके हृदय मे अशान्ति भरी पडी हो, वही व्यक्ति शान्ति की चाहना करता है। पानी की चाह प्यासा ही करता है। रोटी की माग भूखा हो रखता है। जिसमे जिस बात की कमी होती है वह उसे दूर करना चाहता है। तदनुसार भक्त भी भगवान्

आप आरोगने के लिये पधारिये। उसका शब्द इतना धीमा था कि वह महाराजा के कान में पड़ा हो या न पडा हो। महाराजा का ध्यान भंग न हुआ। वे तो ध्यान में यही सोच रहे थे कि हे प्रभो ! मेरे किस पाप के उदय के कारण मेरी प्यारी प्रजा महामारी का शिकार बन रही है ? मैं राजा हूं ! प्रजा मुझे पिता कहती है, मेरे पैरों पड़ती है और अपनी शक्ति मुझे सौंपती है। फिर उसका कल्याण न कर सकूं तो मुझ पर बड़ा भार बढ़ता है।

राजकोट श्री संघ के सैक्रेटरी मुझसे कहने लगे कि महाराज ! आप यहा क्या पधारे हैं, हमारे लिए तो साक्षात् गंगा अवतीर्ण हुई है। मैं कहता हूं कि गंगा तो यहां का श्री सघ है। यहां का संघ या समाज मुझको जो मान बड़ाई प्रदान करता है, उससे मुझ पर भार बढ़ता है, मेरी जिम्मेवारी बढती है। यदि मैं यहां की समाज का वास्तविक कल्याण न कर सकूं तो आपका दिया हुआ मान मुझ पर भार ही है। आप लोग बैंक मे रुपये रखते हैं। बैंक का काम आपके रुपयों की रक्षा करना है। यदि वह रक्षा न करे तो उस पर भार है। बैंक तो कभी दिवाला भी निकाल दे किन्तु क्या हम साधु लोग भी दिवाला निकाल सकते हैं ? आप लोग हम साधुओ के लिए कल्याण मंगल आदि शब्द कहते हैं। हमारा ऊपरी साधु भेष देखकर ही आप लोग ऐसा कहते हैं। कल्याण मगल आदि शब्द कहला कर भी यदि हम आपका कल्याण न करें तो सचमुच हम पर भार बढता है। आपके दिए हुए मान के बदले मे हमारा कुछ कर्तव्य हो जाता है और वह आपके लिए कल्याण कार्य करना ही है

यह तो हम साधुओ की बात हुई। अब आपकी बात

यह कहा जा सकता है कि जब प्यास लगी हो तब ठण्डा पानी और भूख लगने पर रोटी मिल जाने से शांति मिलती है और यह प्रत्यक्ष अनुभूत बात भी है। वैसी हालत में यह कैसे कहा जा सकता है कि संसार के किसी भी पदार्थ में शान्ति नही है ? इसका उत्तर यह है कि सयाने लोग शान्ति उसी को कहते हैं, जिसमें अशान्ति का लवलेश भी न हो। जो शान्ति एकान्तिक और आत्यन्तिक है, वही सच्ची शान्ति है। जिस पदार्थ में एकान्तिक और आत्यतिक शाति नहीं है, वह शान्तिदायक नही कहा जा सकता। पदार्थों मे शान्ति का आभास होता है, किन्तु शान्ति का वास्तविक स्रोत अन्य ही है। उदाहरण के लिए समझ लीजिये कि किसी को प्यास लगी है और उसने पानी पी लिया है। यदि उसी व्यक्ति को उसी समय पुनः पानी पीने के लिए कहा जाय तो क्या वह पानी पीयेगा ? नही पीयेगा। यदि पानी में शान्ति है तो वह व्यक्ति पुनः पुनः पानी पीने से क्यों इन्कार करता है ? दूसरी बात–एक बार पानी पीने से उस समय उसकी प्यास बुझ गई थी, उस समय उसने पानी में शान्ति का अनुभव किया था किन्तु दो एक घण्टा बीत जाने पर वह फिर पानी पीता है या नही ? फिर पानी पीने का क्या कारण है ? यही कि उस समय पानी पीने से उस समय की प्यास बुझ गई थी लेकिन कायम के लिए उस पानी से प्यास न बुझी थी। कल रोटी खाई थी। क्या आज पुनः खानी पड़ेगी ? यदि रोटी से भूख मिट जाती है तो पुनः क्यों खानी पड़ती है ! इससे ज्ञात होता है कि रोटी पानी आदि भौतिक पदार्थों में सुख नही है किन्तु सुख का आभास मात्र है। शान्ति नही है किन्तु शान्ति का आभास है। संसार के किसी भी पदार्थ मे एकान्तिक

पुरुष होकर उनकी बलाय बनते हैं। क्या यह ठीक है? पेट साफ रहता है आदि कथन बीड़ी पीने का बहाना मात्र है। बीडी पीने से लाभ नही होता। बीड़ी न पीने से किसी भी प्रकार की हानि होगी तो इस बात की मैं जिम्मेवारी लेता हूँ। मैं कहता हूँ कि बीड़ी न पीने से किसी भी प्रकार की हानि न होगी। अतः भाइयो! बीड़ी पीना छोड़ दीजिये। डॉक्टरों का कहना है कि तमाखू मे निकोटाइन नामक जहर रहता है जो पेट मे जाकर भयंकर हानि पहुंचाता है। डॉक्टरों का यह भी कहना है कि एक बीड़ी में जितनी तमाखू होती है यदि उसका अर्क निकाला जाय तो उससे सात मेढक मर सकते हैं। इस प्रकार हानि पहुंचाने वाली तमाखू से क्या लाभ हो सकता है? हां, हानि अवश्य होती है। आप की देखा देखी आपके बच्चे भी बीड़ी पीने लगते हैं। आपके फेके हुए टुकडे को उठाकर बच्चे पीते हैं और इस बात की जांच करते हैं कि हमारे पिताजी जिस बीड़ी को दिन में कई बार पीया करते हैं उसमे क्या मजा रहा हुआ है? बीडी त्याग देना ही उचित है। जो लोग बीडी नहीं पीते हैं वे धन्यवाद के पात्र हैं। जो पीते हैं उनसे हमारा अनुरोध है कि वे इसे छोड़ दें। बीड़ी दुःख का कारण है। ऐसे दु.ख के कारणों को आप परमात्मा के समर्पण करते जाओ। इससे आपकी आत्मा मे आनन्द की वृद्धि होगी। मैं दिल्ली से जमना पार गया था। वहा तमाखू पीने का बहुत रिवाज है। यहां तक कि बहुत सी स्त्रियाँ भी बीड़ी पीती हैं। मैंने तमाखू त्यागने का उपदेश दिया। उस उपदेश से हमारे कई श्रावकों ने तमाखू पीना छोड़ दिया। किन्तु मुझे यह जानकर ताज्जुब हुआ कि एक मुसलमान जो कि साठ सालों से हुक्का पीता था यह कहकर कि

या आत्यन्तिक सुख नहीं है। जब भूख लगी हो तब लड्डू कितने प्यारे लगते हैं। यदि भूख न हो तो क्या लड्डू खाये जा सकते हैं। भूख में प्यारे लगने वाले वे ही लड्डू भूख के अभाव मे कितने बुरे लगते हैं ? इस बुरे लगने का कारण क्या है? यह कि अब भूखजन्य दुःख नही है। जब मनुष्य दुःखी होता है, तब उसे सांसारिक पदार्थों मे शान्ति मालूम देती है। लेकिन जब वह दुःख मिट जाता है, तब सासारिक पदार्थ मे शान्ति नही मालूम पड़ती बल्कि अशाति जान पड़ने लगती है। इसी से तो ज्ञानीजन कहते हैं कि सासारिक पदार्थों में एकान्तिक या आत्यतिक शान्ति नही है। किसी दुःख के समय उनमे शान्ति जान पड़ती है मगर वास्तव में संसार के किसी भी पदार्थ में न पहले सुख था और न अब है। भौतिक पदार्थ शान्ति या सुख के निमित्त कारण अवश्य हैं। शान्ति का उपादान कारण कुछ अन्य ही है !

भक्त कहता है कि हे प्रभो ! मैंने संसार के समस्त पदार्थों को छानबीन कर खोज डाला किन्तु किसी भी पदार्थ में शान्ति नही मिली। अत. अब मैं तेरी शरण आया हूं। और तेरे से शान्ति के लिए प्रार्थना करता हूं।

ध्यान भंग करना है तो आप स्वयं पधारिये । आप उनकी अर्धाङ्गिनी हैं अत आपको अधिकार है कि आप उनका ध्यान भी भंग कर सकती हैं । मुझ दासी से यह काम नही हो सकता ।

यह बात सुन कर महारानी सोचने लगी कि अवश्य आज महाराजा किसी गहरे विचार-सागर मे डूबे हुए हैं । किसी नये मसले पर विचार करते होंगे । उनकी ध्यान मुद्रा को देखकर दासी इतनी चकित हो गई है ।

इस प्रकार विचार कर महारानी स्वयं महाराजा के पास चली गई । वे गर्भवतो थी । फिर भी इस नियम को नहीं तोड़ा कि पति को जीमाये बिना पत्नी नही जीम सकती । गर्भवती होने के कारण रानो भूखी भी नही रह सकती थी । यदि उसका खुद का प्रश्न होता तो वे भूखी भी रह सकती थी किन्तु गर्भ के भूखा रहने का प्रश्न था । गर्भ का भोजन माता के भोजन पर निर्भर होता है । और गर्भ को भूखा नही रखा जा सकता था ।

यहाँ पर इस प्रसंग मे मैं कुछ कहना आवश्यक समझता हूँ । मैं तपस्या करने का पक्षपाती हूँ । लेकिन गर्भवती स्त्री तप करती है, यह मैं ठीक नही समझता । गर्भ का भोजन माता के भोजन पर निर्भर होता है । जब माता भूखी होती है तब गर्भ को भी भूखा रहना पड़ता है । वैद्यक शास्त्र मे कहा है कि गर्भ की माता प्रथम पहर में नही खाती लेकिन द्वितीय पहर का उल्लंघन नही कर सकती । इसके उपरान्त गर्भवती के भूखी रहने से गर्भ पर उससे दया नहीं

आत्मा शरीर में निवास करता है। अभी आत्मा का काम शरीर की सहायता से चलता है। अभी आत्मा को अतींद्रिय शक्ति प्राप्त नहीं हुई है। इन्द्रियों की सहायता से ही आत्मा जानना, सुनना, देखना आदि क्रियाएं करता है। आत्मा को अतीन्द्रिय शक्ति प्राप्त हो जाय तब की बात अलग है। किन्तु अभी तो अतीन्द्रिय शक्ति न होने से शरीर, आंख, कान, नाक, जिह्वा से आत्मा सहायता लेकर अपना निर्वाह करता है।

इस प्रकार यह भौतिक शरीर आत्मा के लिए सहायक है। किन्तु इस भौतिक शरीर के पीछे अनेक भौतिक अशांतिया लगी हुई हैं। इन भौतिक अशांतियो को मिटाने के लिए भी शान्ति का उच्चारण किया जाता है और परमात्मा से शान्ति चाही जाती है। इस शरीर को अनेक रोग, दुःख और शस्त्र-घात आदि कारणों से अशान्ति रहती है। शान्ति के उच्चारण द्वारा इन सब कारणों को मिटाकर अशान्ति मिटाना इष्ट है।

यह शंका की जा सकती है कि ये आधिभौतिक अर्थात् शारीरिक कष्ट तो अन्य उपायो के द्वारा भी मिटाये जा सकते हैं। जैसे रोग वैद्यराज की शरण लेने से और शस्त्राघात का भय किसी वीर योद्धा की शरण में जाने से। फिर इन दुःखों से बचने के लिए परमात्मा की शरण मे जाने और उससे शान्ति की चाहना करने की क्या आवश्यकता है? अन्य स्थूल उपायों के होते हुए परमात्मा तक पुकार पहुंचाने की क्या जरूरत है?

इस शंका का समाधान सच्ची शान्ति का मार्ग जानने और अनुभव करने वाले ज्ञानीजन इस प्रकार करते हैं कि यदि वैद्य या वीरयोद्धा की सहायता ली जायगी और उस

नीचे खडी रहे और मैं सिंहासन पर बैठा रहूँ, यह ठीक नहीं है। उसी समय उन्होंने भद्रासन मगवाया और उस पर महारानी को बिठाया।

जिस घर में पति पत्नी को और पत्नी पति को आदर सत्कार नही देते, समझ लेना चाहिए कि उन्होने लग्न का महत्व नही समझा है। जहाँ पारस्परिक आदर सत्कार देने का साधारण नियम भी न पाला जाता हो, वहां अन्य नियमों की बात ही क्या करना? संसार का सब के वड़ा पाया लग्न पद्धति है। लेकिन आज इस पद्धति की क्या दुर्दशा हो रही?

महाराज ने कहा कि आज मैं किसी विचार में डूब गया था। अतः भोजन करने का भी खयाल न रहा। कहिये आपने तो भोजन कर लिया है न? महारानी ने कहा, क्या मैं आपके पूर्व ही भोजन कर लेती? महाराज ने कहा, हां, आप गर्भवती हैं। अतः आपको भूखा न रहना चाहिए। हम पुरुष हैं। हम पर राज्य के अनेक कठिन कामों का बोझा है। आप स्त्री हैं और आप पर गर्भ–रक्षा का बड़ा भारी बोझा है। इसकी हर प्रकार रक्षा करना आपका कर्तव्य है। निमित्तिये ने कहा था कि आपके गर्भ में महा–पुरुष हैं। अतः आपको भूखा न रहना था।

महाराजा की बात के उत्तर में महारानी ने कहा कि मेरे गर्भ मे महापुरुष हैं तो इसकी चिन्ता आपको भी तो होनी चाहिए। न मालूम आज आप किस चिन्ता में पड़े हुए हैं। अपनी चिन्ता का कारण मुझे भी तो बताइये। महाराजा ने कहा कि हे रानी! आज मुझे बहुत बड़ी

ने नहीं कहा था। न सीता पर वनवास करने की जिम्मेवरी ही थी। फिर भी सीता वन गई थी क्योंकि उन्होने यह अनुभव किया था कि जो जवाबदारी मेरे पति पर है वह मुझ पर भी है। अतः जिस प्रजा को आप पुत्रवत् मानते हैं, वह मेरे लिए भी पुत्रवत् है। जो प्रतिज्ञा आपने ली है, वह मेरे लिए भी है।

रानी का कथन सुनकर महाराजा ने कहा, महारानी, आप गर्भवती हैं! आपके लिए अन्न जल त्यागना ठीक नही है। रानी ने कहा, आप चिन्ता मत करिये। अब प्रजा पर आई हुई आफत गई ही समझिये। रानी के मन मे कुछ विचार आये। उन विचारों के सम्बन्ध में कहने का समय नही है। इतना अवश्य कहता हूँ कि लोग बाहरी बातो का विचार करते हैं और बाहरी बाते ही देखते हैं। किन्तु ख्याल करना चाहिये कि बाहरी बातों के सिवाय आन्तरिक बातें भी हैं और उनका प्रभाव बहुत अधिक है। उन पर विचार करना चाहिये।

'अब आप प्रजा में से रोग गया ही समझिये' कहकर रानी ने स्नान किया और हाथ में जलपात्र लेकर महल पर चढ़ गई। उस समय उनकी आँखों में अपूर्व ज्योति थी। वे हाथ में जल लेकर कहने लगी कि यदि मैंने यावज्जीवन पतिव्रता धर्म का पालन किया हो, मेरे गर्भ में महापुरुष हो, तथा मैंने कभी झूठ कपट का सेवन न किया हो तो हे रोग! तू मेरे पति की रक्षा के लिए गर्भस्थ बालक के प्रभाव से चला जा। यह कह कर रानी ने पानी छिड़का। रानी के द्वारा पानी छिड़कते ही प्रजा मे से रोग—महामारी चली गई।

महारानी ने जो पानी छिड़का था, उसमें महामारी को भगाने की शक्ति नही थी। यह शक्ति रानी के शील में

हुंचाने का विचार किया करते थे। यही कारण है कि
नके यहाँ साक्षात् शांति के अवतार भगवान् शातिनाथ का
न्म हुआ था।

महाराजा विश्वसेन के विचारों पर आप लोग भी गौर
कीजिये। आप शान्ति-दायक पुत्र चाहते हैं या अशान्ति-
दायक ? चाहते तो होंगे आप भी शान्तिदायक पुत्र ही। शाति-
दायक पुत्र प्राप्त करने की इच्छा वालों को स्वयं कैसा बनना
चाहिए ? दूसरों को शान्ति प्रदान करने वाले या दूसरों
की शान्ति में अशान्ति उत्पन्न करने वाले ? यदि अशान्ति-
दायक बनोगे तो पुत्र भी अशान्तिदायक ही उत्पन्न होगा।
जैसी बेल होती है, उसका फल भी वैसा ही होता है।
'बोये पेड बबूल के आम कहा ते होय" ?

एक आदमी दूसरे देश में गया। उसके देश में इन्द्रा-
यण का फल नही होता था। अतः उसने कभी वह फल देखा
न था। नये देश में इन्द्रायण का फल देख कर, वह बहुत
प्रसन्न हुआ। प्रशंसा करने लगा कि यह कैसा सुन्दर देश
है। यहां जमीन पर पड़ी हुई बेल में ही ऐसे सुन्दर फल
लगते हैं। मेरे देश में तो ऊंचे वृक्ष पर ही फल लगते हैं। उस
वक्त उसे भूख लग रही थी। अतः एक फल तोडकर खाया।
किन्तु फल उसे कडुआ लगा। वह थू थू करता हुआ सोचने
लगा कि इतने सुन्दर फल में यह कडुआपन कहां से आया
? यह सोचकर कि देखूं फल कडुआ है पर पत्ते कैसे
उसने पत्ते चखे। पत्ते भी कडुए निकले। फिर उसने
चखा। तो वह भी कडुवा मालूम हुआ। अन्त में
उस बेल का मूल (जड) चखा। बड़े दुःख के साथ उसने

रीत तो नहीं होता है न ? ज्ञातासूत्र में मेघकुमार के अधिकार में यह पाठ आया है कि "उरालेणं तुभे देवी सुविणे दिट्ठे" आदि। मेघकुमार की माता स्वप्न देखकर जब पतिदेव को सुनाने गई थी, तब उनके द्वारा कहे हुये ये प्रशंसा वचन हैं। स्त्री और पुरुष को परस्पर किस प्रकार ऊंची सभ्यता से बर्ताव करना चाहिए, उसका यह नमूना है। शास्त्र में पारस्परिक बर्ताव में कैसी सभ्यता दिखानी चाहिए इसकी शिक्षा दी हुई है। यदि शास्त्र ठीक ढंग से सुनाये और सुने जायं तो बहुत कुछ सुधार हो सकता है। मेघकुमार के पिता ने कहा कि हे रानी तुमने जो स्वप्न देखे हैं वे बहुत उदार, सुखकारी तथा मंगलकारी हैं। इन स्वप्नो के प्रताप से तुम को राज्य और पुत्र का लाभ होगा। रानी को लाभ होने से राजा को लाभ है ही। फिर भी ऐसा न कहा कि मुझे लाभ होगा। किन्तु यह कहा कि रानी, तुझे लाभ होगा।

महाराजा विश्वसेन ने प्रजा में शांति होने का सारा यश रानी के हिस्से में ही बताया और स्वयं यश के भागी न बने। रानी चलो, अब भोजन करें। रानी ने कहा, महाराज इस प्रकार बड़ाई करके मुझ पर बोझा क्यों डाल रहे हैं ? मैं तो आपके पीछे हूं। आपके कारण मैं रानी कहलाती हूं। मेरे कारण आप राजा नही कहलाते। जो कुछ हुआ है वह सब आप के ही प्रताप से हुआ है। मुझ में जो शील की शक्ति है वह आपकी प्रदान की हुई है। आप मुझ पर इस प्रकार बोझा न डालिये। इस प्रकार दोनों एक दूसरे को यश का भागी बनाने लगे। ऐसे घर मे ही महापुरुष जन्म धारण करते हैं।

पुनः राजा कहने लगे, हे रानी यदि मेरे प्रताप से प्रजा में शांति हुई होती तो जब मैं ध्यानमग्न होकर बैठा

अनुभव किया कि उस बेल का मूल भी कडुआ ही था। उस व्यक्ति ने निर्णय किया कि जिसका मूल ही कडुआ होगा, उसके सब अंश कडुए ही होगे।

सारांश यह है कि आप लोग अपने पुत्र को तो शांतिदायक पसन्द करते हैं किन्तु खुद को भी तपासिये कि आप स्वयं कैसे हैं? कोई अच्छे कपडे पहन कर अच्छा बनना चाहे तो इससे उसकी अच्छा बनने की मुराद पूरी नही हो जाती। कपडों के परिवर्तन करने से या सुन्दर साज सजाने से आत्मा अच्छा नहीं बन जाता। इससे तो शरीर अच्छा लग सकता है। यदि खुद के आत्मा मे दूसरों को शान्ति पहुचाने का गुण होगा, तभी मनुष्य अच्छा लगेगा और तभी संतान भी शान्तिदायिनी हो सकती है।

महाराजा विश्वसेन सब को शांति पहुचाने के इच्छुक रहते थे। इसी से उनकी रानी अचिरा के गर्भ मे भगवान् शांतिनाथ ने जन्म धारण किया। जिस समय भगवान् शांतिनाथ गर्भ मे थे उस समय महाराजा विश्वसेन के राज्य मे महामारी का भयंकर प्रकोप हुआ। प्रजा महामारी का शिकार होने लगी। यह देख सुन कर महाराजा बहुत चिंतित हुए और विचार करने लगे कि जिस प्रजा की रक्षा और वृद्धि के लिए मैंने इतने कष्ट उठाये हैं, किस

महाराजा की बात सुनकर महारानी ने कहा कि अच्छी
। है जो कुछ शुभ हुआ है वह गर्भ के प्रताप से ही हुआ
। जिसका ऐसा प्रताप है उसका जन्म होने पर क्या नाम
ना चाहिये । राजा ने कहा, उस प्रभु के प्रताप से राज्य
शान्ति हुई है अतः 'शान्तिनाथ' नाम रखना बहुत उपयुक्त
। वैसे संसार मे जितने भी अच्छे-अच्छे नाम हैं वे सब
मात्मा के ही नाम हैं । आपने भगवान् शान्तिनाथ को
चाना है या नही ? भगवान् शान्तिनाथ को मारवाड़ की
त कहावत के अनुसार तो नही जाना है कि "शान्तिनाथ
लमा, लाडू देवे गोलमा, कृपा करे तो कसार का, दया
रे तो दाल का, मीठा मोती चूर का, लेरे भूंडा लट, उतर
ाय गट ।" इस प्रकार सांसारिक कामना के लिए भगवान्
नाम का प्रयोग करना ठीक नही है । खुद की और संसार
ी वास्तविक शांति के लिए भगवान् के नाम का प्रयोग
रना चाहिये । अपनी की हुई सब अच्छाइयां परमात्मा
 समर्पण करनी चाहिये और सकल संसार की शांति की
कामना करनी चाहिये । आप दूसरों के लिये शांति चाहेंगे
तो आपको खुद को शान्ति जरूर मिलेगी । महाराज विश्व-
सेन ने प्रजा को शान्ति पहुंचाने के लिए कष्ट सहन किये
तो उनको खुद को भी शान्ति प्राप्त हुई । भक्त भगवान्
से यही चाहता है:—

नत्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां, प्राणिनामार्तिनाशनम् ।।

अर्थः— हे परमात्मन् ! मुझे राज्य नहीं चाहिये, न
स्वर्ग और न अपुनर्भव । मैं तो दुःख से तपे हुए प्राणियो के दुःख

चाहिए कि जिससे प्रजा की रक्षा हो और उसे शान्ति प्राप्त हो। यदि मेरे शरीर से यह कार्य न हो सके तो फिर इस शरीर का धारण करना ही व्यर्थ है। मैं निश्चय करता हूँ कि अब प्रजा में कोई नया रोगी न होगा और जो रोगी हैं, वे जब तक अच्छे न हो जायगे तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण न करूंगा ।

महाराजा विश्वसेन ने इस प्रकार सत्याग्रह या अभिग्रह किया, वह अपने निजी स्वार्थ या हित के लिये नही किन्तु जनता के हित के लिए किया था। जनहित के लिए इस प्रकार का दृढ निश्चय करके महाराजा परमात्मा के ध्यान में बैठ गये। ध्यान मे यह विचारने लगे कि मेरे किस पाप के कारण यह महामारी उपस्थित हुई है और प्रजा मरने लगी है ? मेरी किस कमी या असावधानी के कारण प्रजा को यह दु ख सहन करना पड रहा है ?

जो अपने दुःख को तो दु ख समझता है किन्तु दूसरों के दुःख को महसूस नही करता, वह धर्म का अधिकारी नहीं हो सकता। वस्तुतः धर्म का अधिकारी वह है, जो अपने दु.खों की चिन्ता न करे किन्तु दूसरो के दु खो को दूर करने की कोशिश करे। दूसरो को सुखी देखकर प्रसन्न हो और दुःखी देखकर दुःखी हो, वही सच्चा धर्माधिकारी है। यदि आप धर्मात्मा बनने की ख्वाहिश रखते हैं तो यह निश्चय करिये कि हे दीनानाथ ! हम हमारा दुःख सहन कर लेंगे किन्तु अज्ञानी लोग जो कि दुःख से घबड़ाते हैं, उसको सहन न करेंगे। उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न करेंगे। "अत्त-समं मनिज्जे छप्पि कायं" अर्थात् पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और चलते फिरते त्रस जीव इन छः काया के

२ : सूत्रारम्भ में मंगल

'कुन्थु जिनराज तू ऐसो, नहीं कोई देव तों जैसो···।"

यह भगवान् कुन्थुनाथ की प्रार्थना की गई है। भगवान् की प्रार्थना हम हमारी बुद्धि के अनुसार करें चाहें पूर्व के महात्माओ द्वारा मागधी भाषा में जिस प्रकार प्रार्थना की गई है तदनुसार करे, एक ही बात है। आज मैं उन्हीं विचारो को सामने रख कर प्रार्थना करता हूं जो पूर्व के महात्माओं ने प्राकृत भाषा में कहे हैं। शास्त्रानुसार परमात्मा की प्रार्थना करना ही ठीक है। शास्त्र में प्रत्येक स्थल पर परमात्मा की प्रार्थना ही है, ऐसा मैं मानता हूं। मेरी इस मान्यता से किसी का मतभेद भी हो सकता है। लेकिन पूरी तरह से विचार करने पर कोई मतभेद नहीं रह सकता। अर्हन्तों के द्वारा कहे हुए द्वादशांगी में से जो ग्यारह अंग इस समय मौजूद हैं, उन में परमात्मा की प्रार्थना ही भरी हुई है। आत्मा से परमात्मा बनने के उपाय ही तो शास्त्रो मे वर्णित हैं। आत्म स्वरूप का वर्णन प्रार्थना रूप ही है। भगवान् महावीर ने जगत् कल्याण के लिए निर्वाण से पूर्व जो सब से अन्तिम वाणी कही है वह (उत्तराध्ययन) के नाम से प्रसिद्ध है। इस उत्तराध्ययन सूत्र को यदि समस्त जैन शास्त्रों का सार

जीवों को अपनी आत्मा के समान मानना चाहिए। ज्ञानीजन ही यह विचार कर सकता है कि कोई प्राणी दुःख से पीड़ित न हो। अज्ञानी लोग ऐसा विचार नहीं कर सकते।

महाराजा विश्वसेन अन्न-जल त्याग का अभिग्रह ग्रहण कर के परमात्मा के ध्यान मे तल्लीन होकर बैठे हुए थे। उधर महारानी अचिरा भोजन करने के लिए पतिदेव की प्रतीक्षा कर रही थीं। भारतीय सभ्यता के अनुसार पतिव्रता स्त्री पति के भोजन करने के पूर्व भोजन नही करती हैं। गुजराती भाषा मे कहावत है कि 'माटी पहली बैयर खाय, तेनो जमारो एले जाय'। आज भी भले घरो की स्त्रियां पति के भोजन करने के पहले भोजन नही करती किन्तु पति के भोजन कर चुकने पर भोजन करती हैं।

भोजन करने का समय हो चुका था और भोजन भी तैयार था फिर भी महाराजा के न पधारने से महारानी अचिरा ने दासी को बुलाकर उससे कहा कि तू जाकर महाराजा से अर्ज कर कि भोजन तैयार है। राजा को भोजन निश्चित समय पर ही करना चाहिए ताकि शरीर-रक्षा हो और शरीर-रक्षा होने से प्रजा की भी रक्षा हो सके। दासी महाराजा के पास गई किन्तु उन्हे ध्यान में तल्लीन देखकर

स्त्र के विषय में भी है। जिसकी बुद्धि का जितना विकास
ा होगा उतना ही उसे शास्त्र-ज्ञान हासिल हो सकता है।
स्त्र समझने का असली उपादन कारण आत्मा है और
तका आत्मा जितना निर्मल, वासना-रहित होगा उतना
वह समझ सकेगा हृदय मे धारण करके आचरण में
उतार सकेगा।

समस्त उत्तराध्ययन का वर्णन करना, उसमें रहे
गूढ विषयों का भावार्थ समझाना बहुत कठिन है। समय
अधिक चाहिये सो नही है। अतः उत्तराध्ययन के बीसवें
यन का वर्णन किया जाता है।

यह बीसवाँ अध्ययन इस जमाने के लोगों के लिए
समान है। मानव हृदय मे जितनी शंकाएं उठती हैं
ब का समाधान इस अध्ययन मे है, ऐसी मेरी धारणा
इस अध्ययन का वर्णन मैंने पहले बीकानेर में किया
तः अब पुनः वर्णन करने की जरूरत नही है। किंतु
न्तों का आग्रह है कि उसी अध्ययन का यहाँ भी
वेवेचन किया जाय। सन्तो के कहने से मैं इस पर
ान प्रारम्भ करता हूँ। इस अध्ययन को आधार
ार मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

उन्नीसवें अध्ययन में मृगापुत्र का वर्णन है। उस
गया है कि साधु महात्माओं को वैद्य डाक्टरों की
मे न जाकर अपनी आत्मा का ही सुधार करना
। आत्मा का ही सुधार करना या जगाना इसका
नहीं है कि स्थविरकल्पी साधु वैद्य-डाक्टरों की
न ले। स्थविरकल्पी साधु वैद्य डाक्टरों की सहा-

आप आरोगने के लिये पधारिये। उसका शब्द इतना धीमा था कि वह महाराजा के कान में पड़ा हो या न पडा हो। महाराजा का ध्यान भंग न हुआ। वे तो ध्यान में यही सोच रहे थे कि हे प्रभो ! मेरे किस पाप के उदय के कारण मेरी प्यारी प्रजा महामारी का शिकार बन रही है ? मैं राजा हूं ! प्रजा मुझे पिता कहती है, मेरे पैरों पड़ती है और अपनी शक्ति मुझे सौंपती है। फिर उसका कल्याण न कर सकूं तो मुझ पर बड़ा भार बढ़ता है।

राजकोट श्री संघ के सैक्रेटरी मुझसे कहने लगे कि महाराज ! आप यहा क्या पधारे हैं, हमारे लिए तो साक्षात् गंगा अवतीर्ण हुई है। मैं कहता हूं कि गंगा तो यहां का श्री सघ है। यहां का संघ या समाज मुझको जो मान बड़ाई प्रदान करता है, उससे मुझ पर भार बढ़ता है, मेरी जिम्मेवारी बढती है। यदि मैं यहां की समाज का वास्तविक कल्याण न कर सकूं तो आपका दिया हुआ मान मुझ पर भार ही है। आप लोग बैंक मे रुपये रखते हैं। बैंक का काम आपके रुपयों की रक्षा करना है। यदि वह रक्षा न करे तो उस पर भार है। बैंक तो कभी दिवाला भी निकाल दे किन्तु क्या हम साधु लोग भी दिवाला निकाल सकते हैं ? आप लोग हम साधुओ के लिए कल्याण मंगल आदि शब्द कहते हैं। हमारा ऊपरी साधु भेष देखकर ही आप लोग ऐसा कहते हैं। कल्याण मगल आदि शब्द कहला कर भी यदि हम आपका कल्याण न करें तो सचमुच हम पर भार बढता है। आपके दिए हुए मान के बदले मे हमारा कुछ कर्तव्य हो जाता है और वह आपके लिए कल्याण कार्य करना ही है

यह तो हम साधुओ की बात हुई। अब आपकी बात

भागती है।

इस बीसवें अध्ययन का वर्णन किस प्रकार किया गया यह बताते हुए मैं इसी अध्ययन की प्रथम गाथा द्वारा ात्मा की प्रार्थना करता हूं।

सिद्धाए नमो किच्चा, संजयाए च भावओ।
अत्थ धम्म गइं तच्चं, अणुसिट्ठिं सुणेह मे।

मूल सूत्र है।

गुरु शिष्य से कहते हैं कि मैं तुम्हे शिक्षा देता हूं, मुक्ति का मार्ग बताता हूं। किन्तु यह कार्य मैं अपनी ; पर ही भरोसा रख कर नहीं करता। सिद्ध और तयों को नमस्कार करके, उनकी शरण लेकर, उनके ार पर यह काम करता हूं।

वैसे तो जहाँ का मार्ग पूछा जाता है, वहीं का मार्ग ा जाता है किन्तु यहां मुक्ति का मार्ग बताया जाता गुरु कहते हैं कि मैं अर्थ धर्म का मार्ग बताता हूं। अर्थ का—अर्थ समझ लेना चाहिए।

अर्थ्यंते प्रार्थ्यंते धर्मात्मभिरिति अर्थः। स च प्रकृते मोक्षः,
सयमादिर्वा। स एव धर्मः। तस्य गति. ज्ञानम्
यस्या ता अनुशिष्टि मे शृणुत इत्यर्थः॥

अर्थ.—धर्मात्मा लोगों के द्वारा जिसकी चाहना की वह अर्थ है। यहा अर्थ से मतलब मोक्ष या संयम से ोक्ष या संयम ही धर्म है। उसकी गति या मार्ग

मैं आप लोगों से कहता हूँ। आप भी तीर्थ कहलाते हैं। तीर्थ उसे कहते हैं जो दूसरो को तारे, पार उतारे। दूसरों को वही तार सकता है जो खुद तरता है। जो स्वयं न तरता हो वह दूसरो को क्या तारेगा? रेल यदि आप लोगों को अपने मे बैठा कर दूसरी जगह न पहुचाये तो क्या आप उसे रेल कहेंगे? इसी तरह तीर्थ होकर भी यदि दूसरों न तारो तो तीर्थ कैसे कहला सकते हो। दूसरो को तभी तार सकते हो जब स्वयं तिरो।

एक भाई का मुंह बासता था। मैंने पूछा, क्या बीडी पीते हो? उसने उत्तर दिया, जी हा पीता हूँ। मेरे पीछे यह दुर्व्यसन लग गया है। मैंने कहा कि भगवान् महावीर के श्रावक होकर आपमे यह कमजोरी कैसी? विना कष्ट सहन किये कोई कार्य नही होता। कष्ट सहन करके भी यदि इस दुर्व्यसन को तिलाञ्जली दे सको तो इसमे तुम्हारा और हमारा दोनो का कल्याण है। आपके तीर्थंकर के माता पिता जगत् के कल्याण के लिए अन्नजल त्याग देते हैं और आप बीडी जैसी तुच्छ वस्तु को भी न छोड़ सके, यह मुझ पर कितना भार है? मैं इस विषय मे क्या कहूँ? यदि लोग बीड़ी पीना छोड़ दें तो मैं कह सकता हू कि राजकोट का सघ बीडी नहीं पीता है।

बीड़ी पीने वाले कहते हैं कि बीडी पीने से दस्त साफ

मैं ज्ञान की शिक्षा देता हूँ। ज्ञान प्रकाश है और
ा अधकार। ज्ञान रूपी प्रकाश से आत्मदेव के दर्शन
ा हैं।

ज्ञान का अर्थ भी बड़ा लम्बा होता है। संसार-
हार का ज्ञान भी ज्ञान ही कहलाता है। आधुनिक
क विज्ञान भी ज्ञान ही है। किन्तु यहां कहा गया है
धर्म रूपी अर्थ मे गति कराने वाले तत्व का ज्ञान देता
अर्थात् संसार प्रपंच का ज्ञान नही देता किन्तु तत्व
ज्ञान देता हूँ। यह ज्ञान शिष्य मे भी मौजूद है मगर
त अवस्था में नही है, दबा हुआ है। उस छिपे हुए
को मैं प्रकट करने की कोशिश करूंगा। शिक्षा देकर
ज्ञान को जगाऊंगा।

दीपक में तैल भी हो और बत्ती भी हो किन्तु यदि
न का संयोग न हो तो दीपक जल नही सकता, वह
ाश नही कर सकता। इसी प्रकार हर आत्मा में ज्ञान
प्रकाश मौजूद है मगर गुरु अथवा महापुरुष के सत्संग
ा विकसित नही हो सकता। महापुरुष का सत् समा-
हमारे ज्ञान को विकसित करता है किन्तु ज्ञान हमारे
ही मौजूद है। यदि हमारे मे ज्ञान मौजूद न हो तो
क महापुरुष मिल कर भी कुछ नही कर सकते। ज्ञान,
न रूप मे आत्मा मे विद्यमान है। महापुरुष रूपी बाह्य
मित्त कारण के मिलने से बीज वृक्ष का रूप धारण
ता है और फलता-फूलता है। यदि दीपक मे न
हो और न बत्ती हो तो दूसरे दीपक से भेंटने पर भी
जल नही सकता। तैल बत्ती होने पर दूसरा दीपक

पुरुष होकर उनकी बलाय बनते हैं। क्या यह ठीक है? पेट साफ रहता है आदि कथन बीड़ी पीने का बहाना मात्र है। बीडी पीने से लाभ नही होता। बीड़ी न पीने से किसी भी प्रकार की हानि होगी तो इस बात की मैं जिम्मेवारी लेता हूँ। मैं कहता हूँ कि बीड़ी न पीने से किसी भी प्रकार की हानि न होगी। अतः भाइयो! बीड़ी पीना छोड़ दीजिये। डॉक्टरों का कहना है कि तमाखू मे निकोटाइन नामक जहर रहता है जो पेट मे जाकर भयंकर हानि पहुंचाता है। डॉक्टरों का यह भी कहना है कि एक बीड़ी में जितनी तमाखू होती है यदि उसका अर्क निकाला जाय तो उससे सात मेढक मर सकते हैं। इस प्रकार हानि पहुंचाने वाली तमाखू से क्या लाभ हो सकता है? हां, हानि अवश्य होती है। आप की देखा देखी आपके बच्चे भी बीड़ी पीने लगते हैं। आपके फेंके हुए टुकडे को उठाकर बच्चे पीते हैं और इस बात की जांच करते हैं कि हमारे पिताजी जिस बीड़ी को दिन में कई बार पीया करते हैं उसमे क्या मजा रहा हुआ है? बीडी त्याग देना ही उचित है। जो लोग बीडी नहीं पीते हैं वे धन्यवाद के पात्र हैं। जो पीते हैं उनसे हमारा अनुरोध है कि वे इसे छोड़ दें। बीड़ी दुःख का कारण है। ऐसे दु.ख के कारणों को आप परमात्मा के समर्पण करते जाओ। इससे आपकी आत्मा मे आनन्द की वृद्धि होगी। मैं दिल्ली से जमना पार गया था। वहा तमाखू पीने का बहुत रिवाज है। यहां तक कि बहुत सी स्त्रियाँ भी बीड़ी पीती हैं। मैंने तमाखू त्यागने का उपदेश दिया। उस उपदेश से हमारे कई श्रावकों ने तमाखू पीना छोड़ दिया। किन्तु मुझे यह जानकर ताज्जुब हुआ कि एक मुसलमान जो कि साठ सालों से हुक्का पीता था यह कहकर कि

ी शुक्लध्यान रूपी जाज्वल्यमान अग्नि से जला दिया है,
सिद्ध है । अथवा 'षिधुगतौ' से भी सिद्ध बन सकता
जिस स्थान पर पहुंच कर फिर वहां से नहीं लौटना
ा, उस स्थान पर जो पहुंच गये है, उन्हें भी सिद्ध
ते हैं ।

कुछ लोग ऐसा कहते है कि सिद्ध होकर भी पुनः
र मे लौट आते हैं । जैसे कहा है:—

> ज्ञानिनो धर्म तीर्थस्य, कर्त्तारः परमं पदम् ।
> गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि भव तीर्थ-निकारतः ॥

अर्थात्—धर्म रूपी तीर्थ के कर्त्ता ज्ञानी लोग अपने
का पराभव देख कर परम पद को पहुंच कर भी पुनः
र में लौट आते हैं ।

यदि सिद्धि स्थल में पहुंच कर भी वापस संसार में
ाते हो तो वह सिद्धि स्थल ही न कहा जायगा ।
–मुक्ति तो उसे ही कहते हैं कि जहां पहुंच कर वापस
लौटना पड़ता । कहा है—

> यत्र गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।

अर्थात्—जहां जाकर वापस न आना पड़े वह परम
है और वही सिद्धो का स्थान है । उसे ही सिद्धि
हैं । जहां जाकर वापस आना पड़े, वह तो ससार
।

व्युत्पत्ति के अनुसार सिद्ध शब्द का तीसरा अर्थ भी
है । 'षिधु सराद्धौ' जो कृतकृत्य हो चुके हैं, जिनको

जव मेरा मालिक तमाखू नही पीता है, मैं कैसे पी सकत
हूँ, तमाखू छोड देता है। जब वह मुसलमान दुबारा मुझ
से मिला तब कहने लगा कि महाराज आपके उपदेश से मैंने
हुक्का पीना क्या छोड दिया है, गोया एक बीमारी छोड दी है।

वीडी न पीने से रोग रहता है, यदि यह बात ठीक
मानी जाय तो बोहरे लोग जोकि बीडी नही पीते हैं, क्या
रोगी रहते हैं ? मारवाड़ मे विश्नोई जाति के लोग रहते
हैं, जो न मास खाते, न दारू पीते, न बीडी ही पीते हैं। वे
बडे तन्दुरुस्त रहते हैं ! वे फुरसत के समय पुस्तकें पढ़ते
हैं। किसी भी दुर्व्यसन मे नही फंसते। इससे वे बडे सुखी हैं।

कहने का मतलब यह है कि आप लोग दुर्व्यसन त्यागो !
यह न सोचो कि हमारा नाम तीर्थ मे लिखा हुआ ही है,
अब हम चाहे जैसे काम किया करें। यह विचार करो कि
यदि हम ऐसे दुर्व्यसन को भी न त्यागेंगे तो श्रावक नाम
कैसे धरायेंगे ? आज मैं इस विषय पर थोडा ही कहता हूँ।
बीडी तमाखू पर एक स्वतन्त्र और पूरा ...
सकता है।

महाराजा विश्वसेन का ध्यान

इस का उत्तर यह है कि जो महात्मा मौन रहकर
वन व्यतीत करते हैं तथा जिन्हे उपदेश देने का अवसर
न मिला हो, वे भी जगत् का कल्याण करते ही हैं।
ाके लिए भी यह शास्ता शब्द लागू होता है। ध्यान
न द्वारा मोक्ष प्राप्त करने वाले महात्मा भी संसार को
क्षा देते हैं और वह शिक्षा भी महान् है। संसार को
ान शिक्षा की भी बहुत आवश्यकता है। हिमालय की गुफा
बैठ कर या किसी एकान्त शान्त स्थान पर में ध्यानस्थ
कर एक योगी ससार को जो सहायता पहुंचाता है और
सके द्वारा जगत् का जो कल्याण साधता है, उसकी बरा-
री बहुत उपदेश झाड़ने वाले किन्तु आचरण-शून्य व्यक्ति
भी नहीं कर सकते। यह संसार अधिकतर न बोलने
ालों की सहायता से ही चलता है। मूक सृष्टि के आधार
र ही यह बोलने वाली सृष्टि निर्भर रही है। पृथ्वी पानी
ादि के जीव मूक ही हैं। ये मूक जीव ही इस बोलती
ई सृष्टि का पालन करते हैं। इस से यह बात समझ मे
ा जायगी कि उपदेश न देने वाले महात्मा भी जगत् का
ल्याण करते ही हैं। वासनाओं से रहित उनकी शान्त,
ान्त और संयत आत्मा से वह प्रकाश-आध्यात्मिक तेज
िकला है कि जिससे आधि-व्याधि और उपाधि से संतप्त
ात्माओं को अपूर्व शांति मिल सकती है।

गुरोस्तु मौनं शिष्यास्तु छिन्न-संशयाः

अर्थात्—गुरु के मौन होने पर भी उनकी आकृति
ादि के दर्शन मात्र से संशय छिन्न भिन्न हो जाते हैं।
ास्तिक से नास्तिक शिष्य भी गुरु की ध्यानावस्थित

ध्यान भंग करना है तो आप स्वयं पधारिये। आप उनकी अर्धाङ्गिनी हैं अत आपको अधिकार है कि आप उनका ध्यान भी भंग कर सकती हैं। मुझ दासी से यह काम नही हो सकता।

यह बात सुन कर महारानी सोचने लगी कि अवश्य आज महाराजा किसी गहरे विचार-सागर मे डूबे हुए हैं। किसी नये मसले पर विचार करते होंगे। उनकी ध्यान मुद्रा को देखकर दासी इतनी चकित हो गई है।

इस प्रकार विचार कर महारानी स्वयं महाराजा के पास चली गई। वे गर्भवतो थी। फिर भी इस नियम को नहीं तोड़ा कि पति को जीमाये बिना पत्नी नही जीम सकती। गर्भवती होने के कारण रानी भूखी भी नही रह सकती थी। यदि उसका खुद का प्रश्न होता तो वे भूखी भी रह सकती थी किन्तु गर्भ के भूखा रहने का प्रश्न था। गर्भ का भोजन माता के भोजन पर निर्भर होता है। और गर्भ को भूखा नही रखा जा सकता था।

यहाँ पर इस प्रसंग मे मैं कुछ कहना आवश्यक समझता हूँ। मैं तपस्या करने का पक्षपाती हूँ। लेकिन गर्भवती स्त्री तप करती है, यह मैं ठीक नही समझता। गर्भ का भोजन माता के भोजन पर निर्भर होता है। जब माता भूखी होती है तब गर्भ को भी भूखा रहना पड़ता है। वैद्यक शास्त्र मे कहा है कि गर्भ की माता प्रथम पहर में नही खाती लेकिन द्वितीय पहर का उल्लंघन नही कर सकती। इसके उपरान्त गर्भवती के भूखी रहने से गर्भ पर उससे दया नहीं

ने व्यक्ति के प्रति राग-द्वेष-पूर्ण भावना लाता है, तब उसकी मांगलिकता नष्ट होती है। राग द्वेष करने के रण वह मंगल रूप न रह कर अमंगलरूप बन जाता है। न्तु जो महापुरुष कष्ट देने वाले के प्रति प्रेम की वर्षा ते हैं, उसके लिए सद्भाव रखते हैं, उसके सुधार की मना करते हैं, वे सदा मांगलिक ही हैं। गजसुकुमार न ने सिर पर अग्नि के अंगारे रखने वाले का मन में ा उपकार माना कि इस सोमिल ब्राह्मण ने मेरी शीघ्र क्ति में बड़ी सहायता की है। तथा भगवान् महावीर ने ने पर तेजोलेश्या फेकने वाले गोशालक पर क्रोध नहीं या था। वे मंगलरूप ही बने रहे। इस प्रकार उन में गलिकता घटित होती है। पूर्वजन्म के बैर बदले के रण वेदना या दुःख आदि हो सकते हैं मगर उन वेद- ओं और दुःखों में जो अविचल रहता है, वह सदा गलिक है।

सिद्ध भगवान् मे भाव मांगलिकता है, द्रव्य मांगलिकता ही है। आप लोग द्रव्य मंगल देखते हैं। जिसमें भाव गल हो वह द्रव्य मंगलजन्य चमत्कार दिखा सकता है न्तु सिद्धि पद को पाने वाले महात्मा ऐसा नही करते। ऊंचे पहुंचे हुए महात्मा ही चमत्कार दिखाने के झंझट पड़ते हैं। वे अपनी आत्मशांति में मशगूल रहते हैं। दि उन्हें चमत्कार दिखाने की इच्छा होती तो वे चक्रवर्ती ा राज्य और सोलह २ हजार देवों की सेवा का त्याग ों करते और संयम क्यों लेते? चमत्कार करने वाले ा ही स्वयं सेवक हों तब क्या कमी रह जाती है।

जिस प्रकार सूर्य की कोई पूजा करता है और कोई

हो सकती। प्रथम अहिंसा व्रत में 'भत्तपाण वुच्छेए' अर्थात् भोजन और पानी का विच्छेद करना अन्तराय डालना अतिचार कहा गया है। यदि गर्भवती तपस्या करके भूखी रहेगी तो बलात् गर्भ को भी भूखे रहना पड़ेगा और इस तरह वह गर्भ पर दया नहीं कर सकती। आप लोग संवत्सरी का उपवास करते हैं। क्या उस दिन घर में रही हुई गाय को भी उपवास कराते हैं या घास डालते हैं? स्वयं चाहे उपवास करो किन्तु गाय को तो घास डालते ही हो। यदि गाय को घास न डालो तो 'भत्तपाण वुच्छेए' नामक अतिचार लगेगा और इस प्रकार दया का लोप होगा। गर्भवती के भूखा रहने से गर्भ को भूखा रहना पड़ेगा और इस तरह गर्भ की दया न रहेगी। भगवती सूत्र में कहा है कि गर्भ का भोजन वही है जो माता का भोजन है। अतः गर्भवती को तपस्या करके गर्भ को भूखा नहीं रखना चाहिए।

महारानी अचिरा महाराज के पास गई। उसने देखा कि महाराज ध्यान-मग्न हैं। उसने कहा, मेरी सखी ठीक ही कहती थी और ऐसी अवस्था में उसकी क्या हिम्मत हो सकती थी कि वह महाराजा का ध्यान भंग करती? रानी ने अपने अधिकार का ख्याल करके कहा कि हे महाराज! आज आप इस प्रकार ध्यान-मग्न अवस्था में क्यों बैठे हुए ?

इस बीसवें अध्ययन में जो कुछ कहा गया है वह शास्त्रकार ने सक्षेप में इस पहली गाथा मे ही कह ा है। पहली गाथा में सारे अध्ययन का सार किस ार दिया गया है यह बात कोई विशेषज्ञ ही समझ ता है। केवल जैन सूत्रों के विषय में ही यह बात नहीं किन्तु जैनेतर ग्रन्थों मे भी यह परिपाटी देखी जाती है सूत्र के आदि में ही सारे ग्रंथ का सार कह दिया ा है।

मैंने कुरानशरीफ का अनुवाद देखा है। उसमें बताया ा है कि १२४ इलाही पुस्तको का सार तोरत, एंजिल, ब और कुरान इन पुस्तको में लाया गया और इन तों का सार कुरान मे लाया गया है। सारे कुरान का र उसकी पहली आयत मे हैं :—

बिस्मिल्लाह रहिमाने रहीम

सारे कुरान का सार एक ही आयत में कैसे समाया ा है। यह बात समझने लायक है, जब कि इस आयत रहमान और रहीम दोनों आ गये तब कुरान में और ा रह जाता है? हिन्दू धर्म ग्रन्थो में भी कहा गया है 'दया धर्म का मूल है'। यद्यपि इस शब्द मे केवल दो अक्षर हैं किन्तु इसमे धर्म का सपूर्ण सार आ गया है। ा मे सपूर्ण धर्म का सार आ गया है, यह बात कुरान, ान, वेद या आगम से तो सिद्ध होती ही है मगर हमारी त्मा इसका सब से बड़ा प्रमाण है।

मान लीजिये कि आप एक निर्जन जंगल मे जा रहे

नीचे खडी रहे और मैं सिंहासन पर बैठा रहूँ, यह ठीक नहीं है । उसी समय उन्होंने भद्रासन मगवाया और उस पर महारानी को बिठाया ।

जिस घर में पति पत्नी को और पत्नी पति को आदर सत्कार नही देते, समझ लेना चाहिए कि उन्होने लग्न का महत्व नही समझा है । जहाँ पारस्परिक आदर सत्कार देने का साधारण नियम भी न पाला जाता हो, वहां अन्य नियमों की बात ही क्या करना? संसार का सब के वड़ा पाया लग्न पद्धति है । लेकिन आज इस पद्धति की क्या दुर्दशा हो रही ?

महाराज ने कहा कि आज मैं किसी विचार में डूब गया था । अतः भोजन करने का भी खयाल न रहा । कहिये आपने तो भोजन कर लिया है न ? महारानी ने कहा, क्या मैं आपके पूर्व ही भोजन कर लेती ? महाराज ने कहा, हाँ, आप गर्भवती हैं । अतः आपको भूखा न रहना चाहिए । हम पुरुष हैं । हम पर राज्य के अनेक कठिन कामों का बोझा है । आप स्त्री हैं और आप पर गर्भ-रक्षा का बड़ा भारी बोझा है । इसकी हर प्रकार रक्षा करना आपका कर्तव्य है । निमित्तिये ने कहा था कि आपके गर्भ में महा-पुरुष हैं । अतः आपको भूखा न रहना था ।

महाराजा की बात के उत्तर में महारानी ने कहा कि मेरे गर्भ मे महापुरुष हैं तो इसकी चिन्ता आपको भी तो होनी चाहिए । न मालूम आज आप किस चिन्ता में पड़े हुए हैं । अपनी चिन्ता का कारण मुझे भी तो बताइये । महाराजा ने कहा कि हे रानी ! आज मुझे बहुत बड़ी

यदि तू चाहता है कि मुझ पर कोई जुल्म न करे जिन्हे तू जुल्म मानता है, वे जुल्म तू स्वयं दूसरों पर कर ।

यदि कोई आपको मार पीटकर आपके पास की छीनना चाहे या झूठ बोल कर आपको ठगना चाहे वा आपकी बहू बेटी पर बुरी नजर करे तो आप उसे ी मानोगे न ? ऐसों बातें समझाने के लिए किसी क या गुरु की जरूरत नही होती । आत्मा स्वयं गवाही ता है कि अमुक बात भली है या बुरी । ज्ञानी कहते क जिन कामो को तू जुल्म मानता है वे दूसरों के मत कर । किसी का दिल न दुखाना, झूठ न बोलना, ी न करना, पराई स्त्री पर बुरी निगाह न करना और श्यकता से अधिक भोगोपभोग वस्तुएं संग्रह करके न ना ये पांच महानियम हैं जिनके पालन करने से कोई ी नही बनता । जो बात हमें अच्छी लगती है वही के लिए करनी चाहिये । यदि आप जुल्मी न बनोगे तो ा भी जुल्म करना छोड देगा । इस बात को जरा ाई से सोचिये । केवल दूसरे के जुल्मों की तरफ ही र न करो, अपने आपको भी देखो । करीमा में कहा है:-

चहल साल उम्रे अजीजो गुजश्त ।
मिजाजे तो अज हाल तिफ्ली न गश्त ॥

यानी तेरी उम्र के चालीस साल बीत गये तब भी बचपन नही गया । अब तो बचपन छोड़ कर बात हो । जिनको तुम जुल्म या अत्याचार मानते हो, वे यदि दूसरे त्यागे या न त्यागें किन्तु यदि तुम्हें धर्मी ा है तो तुम स्वय ऐसे काम छोड़ दो ।

चिंता हो रही है 'प्राण जाय पर प्रण नहीं जाई' के अनुसार आज मुझे बर्ताव करना है। मुझे प्रजा की रक्षा करने विषयक चिंता है। आप इस चिंता का कारण जानने के उलझन मे न पडो। पहले जाकर भोजन करलो। रानी ने उत्तर दिया कि हे महाराज ! जिस प्रकार प्रजा रक्षा के नियम पर आप अटल हैं, उसी प्रकार मैं भी आपके भोजन किए बिना भोजन न करने के नियम पर अटल हूँ। आप को प्रजा रक्षा की चिंता है मगर कृपा कर के मुझे भी यह बतलाइये कि किस बात के कारण चिंता है ? रानी का आग्रह देखकर महाराजा विश्वसेन असमंजस मे पड़ गये। कुछ देर सोच कर बोले कि महारानी ! मेरे राज्य मे महामारी रोग फैला हुआ है और प्रजा मर रही है। प्रजा में बहुत भय छाया हुआ है। कौन कब मर जायगा, इस का कुछ भी विश्वास नही है। सारी प्रजा मे त्राहि-त्राहि मची हुई है। अतः मैंने प्रतिज्ञा ली है कि जब तक प्रजा का यह कष्ट दूर न होगा, मैं अन्न-जल ग्रहण न करूंगा। महारानी ने उत्तर दिया कि जो प्रतिज्ञा आपकी है, वह मेरी भी है। मैं आपकी अर्धाङ्गना हूँ। जो पुरुष स्त्री की शक्ति को विकसित नहीं होने देता, वह अपनी ही शक्ति का ह्रास करता है। स्त्री को पतिपरायणा और धर्मनिष्ठा बनाने के लिए पति को भी त्याग करना

तु जिसमें रहम–दया हो, शैतानियत का अभाव हो, वह
मन है और जिसमे रहम–दया न हो, शैतानियत हो
काफिर है ।

शास्त्र में यह कहा गया है कि—मैं कल्याण की
क्षा देता हूँ । क्या यह शिक्षा केवल साधुओ के लिए ही
अथवा केवल श्रावको के लिए ही, या सब के लिए है?
सूर्य बिना भेद भाव के सब के लिए प्रकाश प्रदान
ता है तब जिन भगवान् के लिए—

सूर्यातिशायि महिमासि जिनेन्द्र लोके

हे जिनेन्द्र ! जगत् में आपकी महिमा सूर्य से भी
कर है, इत्यादि कहा गया हो, वे भगवान् जगत्
शिक्षा देने मे क्या भेद भाव कर सकते हैं? अनन्त महिमा
भगवान् की वाणी किसी व्यक्ति विशेष के लिए न
ी । सब के लिए होगी ।

सूर्य सब के लिए प्रकाश करता है, फिर भी यदि
ई यह कहे कि हमे सूर्य प्रकाश नही देता, अन्धेरा देता
तो क्या यह कथन ठीक हो सकता है ? कदापि नही ।
मगादड़ और उल्लू यह कहे कि हमारे लिए सूर्य किस
म का ? सूर्य के उदय होने पर हमारे लिए अधिक
धेरा छा जाता है । इसके लिए कहना होगा कि इस में
का कोई दोष नही हैं, वह तो सब के लिए समान रूप
प्रकाश प्रदान करता है । किन्तु यह उनकी प्रकृति का
है कि जिससे प्रकाश देने वाली किरणें भी उनके लिए
धकार का काम देती है ।

ने नहीं कहा था। न सीता पर वनवास करने की जिम्मेवरी ही थी। फिर भी सीता वन गई थी क्योंकि उन्होने यह अनुभव किया था कि जो जबाबदारी मेरे पति पर है वह मुझ पर भी है। अतः जिस प्रजा को आप पुत्रवत् मानते हैं, वह मेरे लिए भी पुत्रवत् है। जो प्रतिज्ञा आपने ली है, वह मेरे लिए भी है।

रानी का कथन सुनकर महाराजा ने कहा, महारानी, आप गर्भवती हैं! आपके लिए अन्न जल त्यागना ठीक नही है। रानी ने कहा, आप चिन्ता मत करिये। अब प्रजा पर आई हुई आफत गई ही समझिये। रानी के मन मे कुछ विचार आये। उन विचारों के सम्बन्ध में कहने का समय नही है। इतना अवश्य कहता हूँ कि लोग बाहरी बातो का विचार करते हैं और बाहरी बाते ही देखते हैं। किन्तु ख्याल करना चाहिये कि बाहरी बातों के सिवाय आन्तरिक बातें भी हैं और उनका प्रभाव बहुत अधिक है। उन पर विचार करना चाहिये।

'अब आप प्रजा में से रोग गया ही समझिये' कहकर रानी ने स्नान किया और हाथ में जलपात्र लेकर महल पर चढ़ गई। उस समय उनकी आँखों में अपूर्व ज्योति थी। वे हाथ में जल लेकर कहने लगी कि यदि मैंने यावज्जीवन पतिव्रता धर्म का पालन किया हो, मेरे गर्भ में महापुरुष हो, तथा मैंने कभी झूठ कपट का सेवन न किया हो तो हे रोग! तू मेरे पति की रक्षा के लिए गर्भस्थ बालक के प्रभाव से चला जा। यह कह कर रानी ने पानी छिड़का। रानी के द्वारा पानी छिड़कते ही प्रजा मे से रोग–महामारी चली गई।

महारानी ने जो पानी छिड़का था, उसमें महामारी को भगाने की शक्ति नही थी। यह शक्ति रानी के शील में

सकता है और बिगाड भी । अतः चरित्र-वर्णन में
त सावधानी रखने की आवश्यकता है ।

धर्म की गूढ बातें समझाने के लिए चरित्र-वर्णन
ता हूं । इस चरित्र के नायक साधु नही किन्तु एक
स्थ हैं, जो अपनी पिछली अवस्था मे साधु बने हैं । गृह-
के चरित्र का वर्णन करके महापुरुषों ने यह बता दिया
क गृहस्थ भी कितने ऊंचे दर्जे तक धर्म का पालन करते
साधुओं को, ग्रहण किये हुए पंच महाव्रत किस प्रकार
न करने चाहिए यह इस से शिक्षा लेनी होगी । चरित्र
क का नाम सेठ सुदर्शन है । मेरी इच्छा इन्ही के गुणा-
द करने की है, अतः आज से प्रारंभ करता हूं ।

सिद्ध साधु को शीश नमा के, एक करूं अरदास ।
सुदर्शन की कथा कहू मैं, पूरो हमारी आस ॥
धन सेठ सुदर्शन, शीयल शुद्ध पाली, तारी आतमा ॥

धर्म के चार अंग हैं—दान, शील, तप और भावना ।
ं का वर्णन एक साथ नही किया जा सकता । अतः
द्वारा शील का कथन किया जाता है । शील के
२ गौण रूप से दान, तप और भाव का भी कथन
। किन्तु मुख्य कथा शील की है । जैसे नाटक दिखाने
यह कहते हैं कि आज राम का राज्यभिषेक दिखाया
ा । किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि राज्या-
क के सिवाय अन्य दृश्य न दिखाये जायेंगे । राज्या-
क मुख्य रूप से बताया जाता है किन्तु गौण रूप से
दृश्य भी दिखाये जाते हैं । इस कथा के नायक ने
ः शील का पालन किया है अतः प्रत्येक कड़ी में उसे

थी। पानी कोई भी छिड़क सकता है। पानी छिड़कने मात्र से रोग नहीं चले जाते। पानी छिड़कने के पीछे सदाचार की शक्ति चाहिये। सुना है कि महाराना प्रताप का भाला उदयपुर मे रखा है। दो आदमियों के उठाने से वह उठता है। वह भाला प्रताप का है। उसके उठाने के लिए प्रताप को सी शक्ति चाहिए। इसी प्रकार पानी के साथ भीतर के पानी की भी जरूरत है।

पानी के छींटे डालकर महारानी चारों ओर महाशक्ति की तरह देखने लगी। चारों ओर देखती हुई वे उस तरह ध्यान मग्न हो गई जिस तरह राजा हुए थे। रानी इस प्रकार ध्यानमग्ना थीं कि इतने में लोगों ने महाराजा से आकर कहा कि महामारी के रोगी अच्छे हो गये हैं और अब प्रजा में शांति बरत रही है। राजा विचार कर रहे थे कि रानी गर्भवती है अतः भूखे रखने से गर्भ को न मालूम क्या होगा किन्तु यह समाचार सुनकर वे प्रसन्न हुए और गर्भस्थ आत्मा का ही यह चमत्कारिक प्रभाव है, ऐसा माना। रानी के गर्भ मे रहे हुए महापुरुष के प्रताप से ही प्रजा में शांति छाई है। महाराजा ऐसा सोच रहे थे कि इतने में दासी ने आकर कहा कि महारानी देवी या शक्ति की तरह महल के ऊपर खड़ी हैं। इस समय की उनकी मुद्रा के विषय में

ा सकता है और बिगाड भी । अतः चरित्र-वर्णन में हुत सावधानी रखने की आवश्यकता है ।

धर्म की गूढ बातें समझाने के लिए चरित्र-वर्णन रता हूँ । इस चरित्र के नायक साधु नही किन्तु एक हस्थ हैं, जो अपनी पिछली अवस्था में साधु बने हैं । गृह- ा के चरित्र का वर्णन करके महापुरुषो ने यह बता दिया कि गृहस्थ भी कितने ऊंचे दर्जे तक धर्म का पालन करते । साधुओं को, ग्रहण किये हुए पंच महाव्रत किस प्रकार लन करने चाहिए यह इस से शिक्षा लेनी होगी । चरित्र यक का नाम सेठ सुदर्शन है । मेरी इच्छा इन्ही के गुणा- ाद करने की है, अतः आज से प्रारंभ करता हूँ ।

सिद्ध साधु को शीश नमा के, एक करू अरदास ।
सुदर्शन की कथा कहू मैं, पूरो हमारी आस ॥
धन सेठ सुदर्शन, शीयल शुद्ध पाली, तारी आतमा ॥

धर्म के चार अंग हैं–दान, शील, तप और भावना । रों का वर्णन एक साथ नही किया जा सकता । अतः ा द्वारा शील का कथन किया जाता है । शील के थ २ गौण रूप से दान, तप और भाव का भी कथन गा । किन्तु मुख्य कथा शील की है । जैसे नाटक दिखाने ले यह कहते हैं कि आज राम का राज्यभिषेक दिखाया यगा । किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि राज्या- षेक के सिवाय अन्य दृश्य न दिखाये जायेंगे । राज्या- षेक मुख्य रूप से बताया जाता है किन्तु गौण रूप से य दृश्य भी दिखाये जाते हैं । इस कथा के नायक ने यतः शील का पालन किया है अतः प्रत्येक कडी मे उसे

रीत तो नहीं होता है न ? ज्ञातासूत्र में मेघकुमार के अधिकार में यह पाठ आया है कि "उरालेणं तुभे देवी सुविणे दिट्ठे" आदि। मेघकुमार की माता स्वप्न देखकर जब पतिदेव को सुनाने गई थी, तब उनके द्वारा कहे हुये ये प्रशंसा वचन हैं। स्त्री और पुरुष को परस्पर किस प्रकार ऊंची सभ्यता से बर्ताव करना चाहिए, उसका यह नमूना है। शास्त्र में पारस्परिक बर्ताव में कैसी सभ्यता दिखानी चाहिए इसकी शिक्षा दी हुई है। यदि शास्त्र ठीक ढंग से सुनाये और सुने जायं तो बहुत कुछ सुधार हो सकता है। मेघकुमार के पिता ने कहा कि हे रानी तुमने जो स्वप्न देखे हैं वे बहुत उदार, सुखकारी तथा मंगलकारी हैं। इन स्वप्नो के प्रताप से तुम को राज्य और पुत्र का लाभ होगा। रानी को लाभ होने से राजा को लाभ है ही। फिर भी ऐसा न कहा कि मुझे लाभ होगा। किन्तु यह कहा कि रानी, तुझे लाभ होगा।

महाराजा विश्वसेन ने प्रजा में शांति होने का सारा यश रानी के हिस्से में ही बताया और स्वयं यश के भागी न बने। रानी चलो, अब भोजन करें। रानी ने कहा, महाराज इस प्रकार बड़ाई करके मुझ पर बोझा क्यों डाल रहे हैं? मैं तो आपके पीछे हूं। आपके कारण मैं रानी कहलाती हूं। मेरे कारण आप राजा नही कहलाते। जो कुछ हुआ है वह सब आप के ही प्रताप से हुआ है। मुझ में जो शील की शक्ति है वह आपकी प्रदान की हुई है। आप मुझ पर इस प्रकार बोझा न डालिये। इस प्रकार दोनों एक दूसरे को यश का भागी बनाने लगे। ऐसे घर मे ही महापुरुष जन्म धारण करते हैं।

पुनः राजा कहने लगे, हे रानी यदि मेरे प्रताप से प्रजा में शांति हुई होती तो जब मैं ध्यानमग्न होकर बैठा

न्तु लोककल्याण के लिए प्रवृत्त न हों तो आप उनको
ना क्यों करने लगेंगे ? महापुरुष यदि जगत् कल्याण के
र्यों में भाग न ले तो बड़ा गजब हो जाय । तब संसार
मालूम किस रसातल तक पहुंच जाय ?

शील का अर्थ बुरे काम छोड कर अच्छे काम करना
। पहले यह देखें कि बुरे काम क्या हैं ? हिंसा, झूठ,
री, व्यभिचार, आवश्यकता से अधिक भोगोपभोग, शराब
दि का नशा तथा अन्य दुर्व्यसन ये बुरे काम हैं । बीड़ी,
म्बाखू, भंग आदि नशीली वस्तुओं का सेवन भी बुरे काम
गिना जाता है । इन सब कामों का त्याग करना संक्षेप
बुराई से निवृत्त होना कहा जाता है ।

दूसरे के साथ बुरा काम करना, अपनी आत्मा के
थ बुराई करना है । दूसरे को ठगना अपनी आत्मा को
गना है । अतः किसी की हिंसा न करना, किसी से झूठ
त न कहना, किसी की बहन-बेटी पर बुरी निगाह न
रना किन्तु मां-बहिन समान समझना, नशे से तथा जुआ
दि व्यसनों से बचना, बुरे कामों से बचना है । इन बुरे
मों से बचकर दया, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि
ण धारण करना तथा खान पान में वृद्धि न रखना
च्छे कामों में प्रवृत्त होना है । परस्त्री-त्यागी भी यदि
वस्त्री से ब्रह्मचर्य का खण्डन करता है तो वह अपूर्णशील
। जो स्व-पर दोनों का त्याग करता है, वह पूर्ण शील
ालने वाला है । शील की यह व्याख्या भी अधूरी है ।
ील की व्याख्या में पांचों महाव्रत भी आ जाते हैं ।

था तब क्यों नहीं हुई ? अतः जो कुछ हुआ है वह मेरे प्रताप से नहीं किन्तु तुम्हारे प्रताप से हुआ है। आप साक्षात् शक्ति हैं। आपके कारण ही यह सब आनन्द हुआ है। राजा की दलील के उत्तर में रानी ने कहा कि शक्ति शिव की ही होती है। आप शिव हैं तभी मैं शक्ति बन सकी हूं। अतः कृपया मुझ पर यह बोझा न डालिये।

राजा ने कहा-अच्छा, अब मेरी तुम्हारी दोनों की बात रहने दो। इस प्रकार इस बात का अन्त न आयेगा। एक दूसरे को यश प्रदान करने का यह गेन्द का सा खेल ऐसे समाप्त न होगा। जैसे गेन्द दूसरे को दी जाती है उसी प्रकार यह यश किसी तीसरी शक्ति को दे डालें। इस कीर्ति का भागी तुम-हम नहीं हैं किन्तु तुम्हारे उदर में विराजमान महापुरुष है। उस महापुरुष के प्रताप से ही प्रजा में शांति हुई है। यह सब यश हम हमारे पास न रखकर उस महा-पुरुष को समर्पण कर हल्के बन जायं।

महाराजा और महारानी की तरह आप लोग भी सब यश: कीर्ति परमात्मा को सौंप दो। अपने लिए न रखो। यदि आप ऐसा कहें कि हे प्रभो ! जो कुछ है, वह सब आप ही का है तो कितना अच्छा रहे। विचार इस बात का करना चाहिये कि परमात्मा को

३ : महा निर्ग्रन्थ व्याख्या

चेतन भज तू अरहनाथ ने ते प्रभु त्रिभुवन राया ।

यह अठारहवे तीर्थंकर भगवान् अरहनाथ की प्रार्थना है। मय कम है अतः इस प्रार्थना पर विशेष विचार न करके ास्त्रीय प्रार्थना पर विचार करता हूँ । कल से उत्तरा-ययन का बीसवा अध्ययन शुरु किया है । इसका नाम महा नग्रंन्थ अध्ययन है । महान् और निग्रंन्थ शब्दों के अर्थ सम-झने हैं । पूर्वाचार्यों ने महान् शब्द के अर्थ बताते हुए अनेक ाते समझाई हैं । उन सब का विवेचन करने जितना समय ाही है । सूत्र समुद्र के समान अथाह हैं । उनका पार हम ैसे कैसे पा सकते हैं ? फिर भी कुछ कहना तो चाहिए, अतः कहता हूँ ।

शास्त्रों में महान् आठ प्रकार के बताये गये हैं । १. ाम महान् २. स्थापना महान् ३. द्रव्य महान् ४. क्षेत्र महान् ५. काल महान् ६. प्रधान महान् ७. अपेक्षा महान् ८. भाव महान् । वीसवें अध्ययन में इन आठ प्रकार के महान् में से कस प्रकार का महान् कहा गया है, यह जानने के पूर्व इनका अर्थ समझ लेना ठीक होगा ।

महाराजा की बात सुनकर महारानी ने कहा कि अच्छी ा है जो कुछ शुभ हुआ है वह गर्भ के प्रताप से ही हुआ । जिसका ऐसा प्रताप है उसका जन्म होने पर क्या नाम ना चाहिये । राजा ने कहा, उस प्रभु के प्रताप से राज्य शान्ति हुई है अतः 'शान्तिनाथ' नाम रखना बहुत उपयुक्त । वैसे संसार मे जितने भी अच्छे-अच्छे नाम हैं वे सब ात्मा के ही नाम हैं । आपने भगवान् शान्तिनाथ को चाना है या नही ? भगवान् शान्तिनाथ को मारवाड़ की त कहावत के अनुसार तो नही जाना है कि "शान्तिनाथ लमा, लाडू देवे गोलमा, कृपा करे तो कसार का, दया रे तो दाल का, मीठा मोती चूर का, लेरे भूंडा लट, उतर ाय गट ।" इस प्रकार सांसारिक कामना के लिए भगवान् नाम का प्रयोग करना ठीक नही है । खुद की और संसार ी वास्तविक शांति के लिए भगवान् के नाम का प्रयोग रना चाहिये । अपनी की हुई सब अच्छाइयां परमात्मा े समर्पण करनी चाहिये और सकल संसार की शांति की कामना करनी चाहिये । आप दूसरों के लिये शांति चाहेंगे तो आपको खुद को शान्ति जरूर मिलेगी । महाराज विश्व-सेन ने प्रजा को शान्ति पहुंचाने के लिए कष्ट सहन किये तो उनको खुद को भी शान्ति प्राप्त हुई । भक्त भगवान् से यही चाहता है:—

> नत्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
> कामये दुःखतप्ताना, प्राणिनामार्तिनाशनम् ।।

अर्थः— हे परमात्मन् ! मुझे राज्य नहीं चाहिये, न स्वर्ग और न अपुनर्भव । मैं तो दुःख से तपे हुए प्राणियो के दुःख

द से तीन प्रकार का है। द्विपद में तीर्थंकर महान् हैं। तुष्पद मे सरभ अर्थात् अष्टापद पक्षी महान् है। अपद में ण्डरीक-कमल महान् है। वृक्षादि अपद जीवो मे कमल हान् है। अचित्त महान् मे चिन्तामरिण रत्न महान् है। मिश्र हान् में राज्य सम्पदा युक्त तीर्थंकर का शरीर महान् है। र्थंकर का शरीर तो दिव्य होता ही है किन्तु वे जो वस्त्रा-षरणादि धारण करते हैं वे भी महान् हैं। स्थापना के ारण वस्तु का महत्व बढ जाता है। अतः मिश्र महान् में स्त्राभूषण-युक्त तीर्थंकर शरीर है।

७. पडुच्च अपेक्षा महान्- सरसों की अपेक्षा चना हान् है और चने की अपेक्षा बेर महान् है।

८. भाव महान्- टीकाकार कहते हैं कि प्रधानता से ायिकभाव महान् है और आश्रय की अपेक्षा पारिणामिक ाव महान् है। पारिणामिक भाव के आश्रित जीव और जीव दोनो हैं। किसी आचार्य का यह भी मत है कि आश्रय ी दृष्टि से उदय भाव महान् है क्योकि ससार के अनन्त ीव उदय भाव के ही आश्रित हैं। इस प्रकार जुदा जुदा त हैं। किन्तु विचार करने से मालूम होता है कि आश्रय ी अपेक्षा पारिणामिक भाव महान् है। इस मे सिद्ध और सारी दोनों प्रकार के जीव आ जाते हैं। अतः प्रधानता क्षायिक भाव और आश्रय से पारिणामिक भाव महान् हैं।

यहां महा निर्ग्रन्थ कहा गया है सो द्रव्य क्षेत्र आदि ी दृष्टि से नही किन्तु भाव की दृष्टि से कहा गया है। ो महापुरुष पारिणामिक भाव से क्षायिक में वर्तते हैं

दूर करने की शक्ति चाहता हूँ

"अपने सब दुःखों को सह लूं, परदुःख सहा न जाय" यह चाहता हूँ। परमात्मा की प्रार्थना करने का यही रहस्य है। उसके दरबार मे से यही भिक्षा मांगनी चाहिए। भगवान् शान्तिनाथ की प्रार्थना यही बात सिखाती है।

राजकोट
५-७-३६ का
व्याख्यान

अर्थात्- मैं अर्थ की शिक्षा देता हूँ। गृहस्थ लोग अर्थ मतलब धन करते हैं किन्तु यहाँ धन कमाने की शिक्षा ा दी जाती किन्तु सब सुखों का मूल स्रोत रूप धर्म की क्षा दी जाती है। निर्ग्रन्थ धर्म की शिक्षा देता हूँ।

आज कल के बहुत से लोग जो कोई उपदेशक आता उसी के बन बैठते हैं। किन्तु शास्त्र कहते है कि तुम ी व्यक्ति विशेष के अनुयायी नही हो। तुम निर्ग्रन्थ धर्म अनुयायी हो। जो निर्ग्रन्थ धर्म की बात कहे उसे मानो र जो इसके विपरीत कहे, उसे मत मानो। निर्ग्रन्थ धर्म प्रतिपादन निर्ग्रन्थ प्रवचन करते हैं। निर्ग्रन्थ प्रवचन शांगो मे विद्यमान हैं। जो शास्त्र या ग्रन्थ द्वादश अगों ही हुई वाणी का समर्थन करते हैं या पुष्टि करते है, वे ्न्थ प्रवचन ही है। किन्तु जो ग्रन्थ बारह अंगों की ी का खण्डन करते हों, उन में प्रतिपादित किसी भी ान्त के विरुद्ध प्ररूपणा करते हो, वे निर्ग्रन्थ प्रवचन हैं। जो निर्ग्रन्थ प्रवचन का अनुयायी होगा वह ऐसे ो ग्रन्थ या शास्त्र को न मानेगा जो द्वादशाग वाणी से र्थत न हो। मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन से मिलती हुई सभी बातें ता हूँ, चाहे वे किसी भी ग्रन्थ या शास्त्र मे कही गई निर्ग्रन्थ प्रवचन से विरुद्ध कोई बात मानने के लिए यार नही हूँ।

शास्त्र के आरम्भ में चार बातें होना जरूरी है। इन बातों को अनुबन्ध चतुष्टय कहा गया है। वे चार ये हैं। १. प्रवृत्ति २. प्रयोजन ३. सम्बन्ध ४. अधि- । किसी भी कार्य की प्रवृत्ति के विषय में पहले विचार

२ : सूत्रारम्भ में मंगल

'कुन्थु जिनराज तू ऐसो, नहीं कोई देव तों जैसो···।"

यह भगवान् कुन्थुनाथ की प्रार्थना की गई है। भगवान् की प्रार्थना हम हमारी बुद्धि के अनुसार करें चाहे पूर्व के महात्माओ द्वारा मागधी भाषा में जिस प्रकार प्रार्थना की गई है तदनुसार करे, एक ही बात है। आज मैं उन्हीं विचारो को सामने रख कर प्रार्थना करता हूं जो पूर्व के महात्माओं ने प्राकृत भाषा में कहे हैं। शास्त्रानुसार परमात्मा की प्रार्थना करना ही ठीक है। शास्त्र में प्रत्येक स्थल पर परमात्मा की प्रार्थना ही है, ऐसा मैं मानता हूं। मेरी इस मान्यता से किसी का मतभेद भी हो सकता है। लेकिन पूरी तरह से विचार करने पर कोई मतभेद नहीं रह सकता। अर्हन्तों के द्वारा कहे हुए द्वादशांगी में से जो ग्यारह अंग इस समय मौजूद हैं, उन में परमात्मा की प्रार्थना ही भरी हुई है। आत्मा से परमात्मा बनने के उपाय ही तो शास्त्रो मे वर्णित हैं। आत्म स्वरूप का वर्णन प्रार्थना रूप ही है। भगवान् महावीर ने जगत् कल्याण के लिए निर्वाण से पूर्व जो सब से अन्तिम वाणी कही है वह (उत्तराध्ययन) के नाम से प्रसिद्ध है। इस उत्तराध्ययन सूत्र को यदि समस्त जैन शास्त्रों का सा

ोजन जानना जरूरी है। इस शास्त्र के पढ़ने से किस
ोजन की सिद्धि होगी, यह बात दूसरे नम्बर पर है।
ोजन के बाद अधिकारी का विचार किया जाता है। इस
स्त्र का अध्ययन मनन करने के लिए कौन व्यक्ति पात्र
और कौन अपात्र है। इसके बाद शास्त्र का सम्बन्ध बताना
हिए। किस प्रसंग से यह शास्त्र बना है, कौन वस्तु कहां
ली गई है, इस शास्त्र का कहने वाला कौन है और सुनने
ला कौन है आदि बताया जाना चाहिए।

इन चारो बातों से शास्त्र की परीक्षा भी हो जाती
यह पहले कह दिया गया है। इस महा निर्ग्रन्थ अध्ययन
ये चारों बातें हैं, यह बात इसके नाम से ही प्रकट है।
ो समय कम है अतः फिर कभी अवसर होने पर अपनी
; के अनुसार यह बताने की चेष्टा करूंगा कि किस
ार अनुबन्ध चतुष्टय का इस अध्ययन मे समावेश है।

अब इसी बात को व्यावहारिक ढग से कहा जाता है
ासे कि सामान्य समझ वाले व्यक्ति भी सरलता से समझ
। यह सबकी इच्छा रहती है कि महान् पुरुष की सेवा
जाय लेकिन महान् का अर्थ समझ लेना चाहिए। भाग-
में कहा है कि—

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितासगिसंगम्।
महीन्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये॥

अर्थात् मुक्ति का द्वार महान् पुरुषों की सेवा करना है
नरक-द्वार कामिनी की संगति करने वाले की सोहबत
ा है। महान् वे हैं जो समचित्त हैं, प्रशान्त हैं, क्रोध

कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी । इस में छत्तीस अध्ययन हैं ।

सारे उत्तराध्ययन सूत्र को क्रमशः आद्योपान्त पढ़ने मे बहुत समय की आवश्यकता होती है । अकेले उत्तराध्ययन के लिए यह बात है तो समस्त द्वादशागी वाणी के लिए बहुत समय, शक्ति और ज्ञान की आवश्यकता है । भगवान् की समस्त वाणी को समझाना और समझना हमारी शक्ति के बाहर है । हमारी शक्ति गागर उठाने की है । सागर उठाने की हमारी शक्ति नहीं है । हमारा सद्भाग्य है कि पूर्वाचार्यों ने हम अल्प शक्ति वाले लोगों के लिए भगवान् की द्वादशागी वाणी रूपी सागर को इस उत्तराध्ययन रूपी गागर मे भर दिया है । इस गागर को हम उठा सकते हैं, समझ सकते हैं । पूर्व के उपकारी महात्माओ ने यह प्रयत्न किया है मगर शास्त्रो को समझने की असली कुंजी हमारी आत्मा मे है । शास्त्र तो निमित्त कारण है । कागज और स्याही के लिखे होने से जड़ वस्तु है । शास्त्र समझने का वास्तविक कारण-उपादान कारण हमारी आत्मा है । उदाहरण के लिए, सब लोग पुस्तकें पढते हैं किन्तु जिनका हृदय विकसित हो, पूर्व-भव के निर्मल संस्कार हो, उन्ही की समझ में पुस्तको मे रही

वस्तु को भी अपनी कहता है लेकिन उपाधि को उपाधि
ानना, यह भी समचित्त का लक्षण है।

यदि कोई व्यक्ति रत्न को ककर कहे और कंकर को
न कहे तो वह मूर्ख गिना जाता है। जब कि रत्न और
कर दोनो ही जड वस्तु हैं। कोई व्यक्ति जगल मे जा रहा
। भ्रमवश उसने सीप को चादी मान लिया और चादी
सीप। उसके मान लेने से सीप चादी नही हो गई और
चादी ही सीप हो गई। किसी के उल्टा मान लेने से
नु अन्यथा नही हो जाती। किन्तु ऐसा मानने या कहने
ला जगत् में मूर्ख गिना जाता है। इसी प्रकार जड को
न्य और चैतन्य को जड कहने मानने वाले भी अज्ञानी
ाझे जाते हैं। इसी अज्ञान के कारण जीव मेरा-तेरा कहा
रता है। जो इस प्रकार की उपाधि मे फसे हैं, वे महान्
ी हैं। वे जड़ पदार्थ के गुलाम हैं। वे आत्मानन्दी नही
जा सकते। महान् वे हैं, जो खुद के शरीर को भी अपना
ी मानते। अन्य वस्तुओ के लिए तो कहना ही क्या?
ावहारिक भाषा से ज्ञानी जन भी मेरा शरीर, मेरा कान,
क आदि कहेगे मगर निश्चय मे वे जानते हैं कि ये सब
ारे नही हैं। कहने का साराश यह है कि समचित्त वाले
ाधि को उपाधि मानते हैं।

अब इस बात पर भी विचार करें कि महान् की सेवा
सलिए करें? कोई यह ख्याल करके महापुरुष की सेवा
कि वे उसके कान मे मन्त्र फूंक देंगे या सिर पर हाथ
देंगे तो वह ऋद्धिशाली हो जायगा, महान् पुरुष का
मान करना है। यह महान् पुरुष की सेवा नही गिनी

स्त्र के विषय में भी है। जिसकी बुद्धि का जितना विकास
ा होगा उतना ही उसे शास्त्र-ज्ञान हासिल हो सकता है।
स्त्र समझने का असली उपादन कारण आत्मा है और
तका आत्मा जितना निर्मल, वासना-रहित होगा उतना
वह समझ सकेगा हृदय मे धारण करके आचरण में
उतार सकेगा।

समस्त उत्तराध्ययन का वर्णन करना, उसमें रहे
गूढ विषयों का भावार्थ समझाना बहुत कठिन है। समय
अधिक चाहिये सो नही है। अतः उत्तराध्ययन के बीसवें
यन का वर्णन किया जाता है।

यह बीसवाँ अध्ययन इस जमाने के लोगों के लिए
समान है। मानव हृदय मे जितनी शंकाएं उठती हैं
ब का समाधान इस अध्ययन मे है, ऐसी मेरी धारणा
इस अध्ययन का वर्णन मैंने पहले बीकानेर में किया
तः अब पुनः वर्णन करने की जरूरत नही है। किंतु
न्तों का आग्रह है कि उसी अध्ययन का यहाँ भी
वेवेचन किया जाय। सन्तो के कहने से मैं इस पर
ान प्रारम्भ करता हूँ। इस अध्ययन को आधार
ार मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

उन्नीसवें अध्ययन में मृगापुत्र का वर्णन है। उस
गया है कि साधु महात्माओं को वैद्य डाक्टरों की
मे न जाकर अपनी आत्मा का ही सुधार करना
। आत्मा का ही सुधार करना या जगाना इसका
नही है कि स्थविरकल्पी साधु वैद्य-डाक्टरों की
न ले। स्थविरकल्पी साधु वैद्य डाक्टरों की सहा-

आये तब प्रशांत रहना बड़ा कठिन है । महान् वह है जो सहन करने के अवसर पर सहनशीलता दिखाता है । कोई पूछ सकता कि क्या दूसरों की गालियां सुनते रहना और उनकी उदण्डता मे सहायता करना सहन शीलता है ? हां, महान् पुरुष वह है जो गालियाँ सुनते वक्त भी शान्तचित्त रहता है । महान् उन गालियों को अपने लिए नही मानते । वे उनमे से भी अपने अनुकूल सार वात ग्रहण कर लेते हैं। जब उनसे कोई यह कहे कि "ओ दुष्ट यह क्या करते हो" तब वे अपने सम्बोधन में कहे हुए दुष्ट विशेषण से भी कुछ न कुछ नसीहत ग्रहण करते है । महान् पुरुष अपने लिये दुष्ट शब्द का प्रयोग सुनकर यह विचार करते हैं कि जिन कार्यों के करने से मनुष्य दुष्ट बनता है, वे कार्य मुझ में तो नही पाये जाते ? यदि दुष्टता कि कोई बात उनमें पाई जाती हो तो वे आत्मनिरीक्षण करके उसे बाहर निकाल फेंकते है और दुष्ट कहने वाले का उपकार मानते हैं, किन्तु यदि उन्हे आत्मनिरीक्षण के बाद यह ज्ञात हो कि उनमें दुष्ट बनाने की कोई सामग्री नही है तो वे ख्याल करके दुष्ट कहने वाले को माफ कर देते हैं कि यह किसी अन्य के लिए कहता होगा अथवा भूल या अज्ञान से कह रहा होगा। अज्ञानी और भूल करने वाले सदा क्षमा करने योग्य होते हैं । मेरे समान वेषभूषा वाले किसी अन्य व्यक्ति को दुष्टता करते देखकर इसने मेरे लिए भी दुष्ट शब्द का व्यवहार किया है-किन्तु इस में इसकी भूल है । यह सोचकर महान् अपनी महत्ता का परिचय देते हैं ।

मान लीजिये आपने सफेद साफा बांध रखा है । किसी ने आपको बुलाने के लिए पुकारा कि ओ काले साफे वाले

यता ले सकते हैं मगर यह अपवाद मार्ग है । शारीरिक बीमारी मिटाने के लिए दवा–दारु देना उत्सर्ग मार्ग नहीं है। उत्सर्ग मार्ग तो यही है कि सिवा भगवान् या अपनी आत्मा या अन्य किसी की सहायता न लेकर आत्म जाग्रति में ही तल्लीन रहे । इस बीसवें अध्ययन में इसी बात का वर्णन है कि साधु वैद्यो की शरण न ले । वैद्य या अन्य कुटुम्बी कोई भी इस आत्मा का त्राण करने में समर्थ नहीं हैं । इस अध्ययन मे यह बताया गया है कि आत्मा मे बहुत शक्ति रही हुई है । भूतकाल में आत्मा कैसी भी स्थिति मे रहा हो, वर्तमान मे कैसी भी स्थिति में हो और भविष्य मे भी कैसी भी स्थिति में रहे, इस बात की चिन्ता नहीं । किन्तु इस स्थिति का यदि त्याग कर दिया जाय तो आत्मा मे अनन्त शक्ति का विकास हो सकता है और वह सब कुछ करने मे समर्थ भी हो सकता है ।

इस बीसवें अध्ययन मे जो कुछ कहा हुआ है, उस सब का सार यह है कि खुद के डाक्टर खुद बनो । ऐसा करने से किसी का आसरा (शरण) लेने की आवश्यकता न रहेगी । आत्मा की शक्ति से आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के ताप–कष्ट दूर हो सकते हैं । त्रयताप के विनाश हो जाने पर आत्मा मे किसी

कृत्य किया है उसी का फल अब मिल रहा है। यह माना जाय कि दूसरा व्यक्ति हमारा शुभ या अशुभ कर रहा है तो खुद का किया हुआ कृत्य व्यर्थ हो जायगा।

कहने का साराश यह है जो प्रसंग पर क्रोधादि विकारों का काबू मे रख सके और सामने वाले को अपने प्रेम पूर्ण बर्ताव से जीत सके, वही महान् है और वही समचित्त भी है। ऐसे पुरुष जड़ पदार्थों के वश में नही होते। वे यह सोचते हैं कि—

जीव नावि पुग्गली नैव पुग्गल कदा पुग्गलाधार नही तास रंगी।
परतणो ईश नही अपर ए एश्वर्यंता वस्तु धर्मे कदा न परसगी॥

श्री देवचन्द्र चौवीसी

जिस व्यक्ति की परमात्मा के साथ लौ लगी होगी, वह यह सोचेगा कि मैं पुद्गल नही हूँ और पुद्गल भी मेरे नहीं है। मैं पुद्गलो का मालिक बन कर भी नही रहना चाहता तो उनका गुलाम होने की बात ही क्या है ?

आज लोगों को जो दु.ख है वह पुद्गलों का ही है। वे पुद्गलो के गुलाम बन रहे हैं। यदि धैर्य रखा जाय तो पुद्गल उनके गुलाम बन सकते हैं। किन्तु लोग धैर्य छोड़ कर पुद्गल के पीछे पडे हुए हैं, इसी से दु ख बढ रहा है। यह दुःख दूसरों का लाया हुआ नही है किन्तु अपने खुद के अज्ञान के कारण से ही है।

श्री समयसार नाटक मे कहा है कि—

कहे एक सखी सयानी, सुन री सुबुद्धि रानी, तेरो पति दुखी—
लग्यो और यार है

भागती है ।

इस बीसवें अध्ययन का वर्णन किस प्रकार किया गया यह बताते हुए मैं इसी अध्ययन की प्रथम गाथा द्वारा ात्मा की प्रार्थना करता हूँ ।

सिद्धाण नमो किच्चा, संजयाण च भावओ ।
अत्थ धम्म गइं तच्चं, अणुसिट्ठिं सुणेह मे ।

मूल सूत्र है ।

गुरु शिष्य से कहते हैं कि मैं तुम्हे शिक्षा देता हूँ, मुक्ति का मार्ग बताता हूँ । किन्तु यह कार्य मैं अपनी पर ही भरोसा रख कर नहीं करता । सिद्ध और तयों को नमस्कार करके, उनकी शरण लेकर, उनके ार पर यह काम करता हूँ ।

वैसे तो जहाँ का मार्ग पूछा जाता है, वहीं का मार्ग ा जाता है किन्तु यहां मुक्ति का मार्ग बताया जाता गुरु कहते हैं कि मैं अर्थ धर्म का मार्ग बताता हूँ । अर्थ का—अर्थ समझ लेना चाहिए ।

अर्थ्यते प्रार्थ्यते धर्मात्मभिरिति अर्थः । स च प्रकृते मोक्षः, सयमादिर्वा । स एव धर्मः । तस्य गति. ज्ञानम् यस्या ता अनुशिष्टि मे शृणुत इत्यर्थः ॥

अर्थ.—धर्मात्मा लोगों के द्वारा जिसकी चाहना की वह अर्थ है । यहा अर्थ से मतलब मोक्ष या संयम से ोक्ष या संयम हो धर्म है । उसकी गति या मार्ग

वाद धर्म को दिया गया है। हम लोग सुदर्शन को धन्य- देते हैं। किन्तु कोरा धन्यवाद देकर ही न रह जांय। भी इनके पद चिह्नों पर चले तभी धन्यवाद देना सार्थक उनके गुणों का अनुसरण न किया तो हमारा बड़ा य होगा। कल्पना करिये कि एक आदमी भूखा है। भूख से कराह रहा था। वह सेठ के घर गया। उस सेठ स्वर्णथाल में परोसे हुए विविध व्यंजनों का भोग रहे थे। सेठ को भोजन करते देखकर वह भूखा व्यक्ति लगा कि सेठ तुम धन्य हो, जो ऐसे पदार्थ भोग रहे मैं अन्न के विना तरस रहा हूँ, भूखों मर रहा हूँ। सुनकर सेठ ने कहा कि भाई! आ तू मेरे साथ बैठ और भोजन करले, भूख का दु:ख मिटाले! सेठ के भोजन का प्रेमपूर्ण निमन्त्रण मिलने पर भी यदि वह क यह कहे कि नही नही मैं न खाऊंगा, मुझे भोजन करना है तो वह व्यक्ति अभागा समझा जायगा!

इस बात को आप अच्छी तरह समझ गये होंगे। निमन्त्रण को आप कभी इंकार न करेंगे। न कभी ऐसी ही करेंगे। भूल तो धर्म कार्य मे होती है। जिस त्र धर्म का पालन करने के कारण आप सुदर्शन को वाद दे रहे हैं वह चारित्र धर्म आपके सामने भी मौजूद आप धन्यवाद देकर न रह जाइये किन्तु उस चारित्र का पालन करिये जिसके पालन से सेठ धन्यवाद के बने हैं। धन्यवाद दे लेने से आत्मा की भूख न मिटेगी। न के समान आप धर्म पर दृढ़ न रह सको तो भी कुछ अंश का तो अवश्य पालन कीजिये। उसका त्र सुनकर उसके चरित्र का कुछ अंश भी यदि जीवन

ज्ञान है । उस ज्ञान का वर्णन मुझ से सुनो ।

जिसकी इच्छा की जाय, उसे अर्थ कहते हैं । सामान्य-मोटी बुद्धि वाले लोग अर्थ का मतलब धन करते हैं । और धन के लिए ही रात दिन दौड़धूप किया करते हैं। किन्तु यहा अर्थ का मतलब धन नही हैं । आप लोग मेरे पास धन लेने नहीं आये हैं । धन का मैं कतई त्याग कर चुका हूं । धन के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु आप चाहते हैं और वही ग्रहण करने के लिए यहा आये हो । कदाचित् किसी गृहस्थ की यह मशा हो सकती है कि महाराज के व्याख्यान श्रवण करने से या किसी अन्य बहाने से धन मिल सकता है किन्तु ये सन्त और सतियां जो यहां आये हुए हैं किसी भौतिक पौद्गलिक चाहना से नहीं आये हैं किन्तु परमार्थ की भावना से आये हैं । सन्त और सतियां आई हैं इसी से मालूम हो जाता है कि अर्थ का अर्थ धन नही किन्तु कोई अन्य वस्तु है । वह अन्य वस्तु मुक्ति से जुदा नही हो सकती । मुक्ति ससार के बंधनों से छुटकारा पाने की इच्छा ही वास्तविक अर्थ है।

जिसकी इच्छा की जाय, वह अर्थ है। किन्तु इस में इतना और बढ़ा देना चा[illegible] कि धम

ता है । एक आदमी भारत का निवासी है और दूसरा
ोप का। क्षेत्र विपाकी गुण दोनों मे जुदा-जुदा होंगे।
बात दूसरी है कि कोई अपने विशेष प्रयत्न के द्वारा उस
ग को मिटा दे या अधिक बढा दे ।

मनुष्य और पशु मे जो भेद है वह क्षेत्र के कारण ही
। आत्मा दोनो की समान है । आत्मा समान होने से
ोई मनुष्य को पशु या पशु को मनुष्य नही कहता । क्षेत्र
पाकी प्रकृति के कारण भेद होता है । उसे भूलाया नहीं
सकता ।

आप भारतीय हैं । भारत में जन्म लेने से भारत का
त्र विपाकी गुण आप में होना स्वाभाविक है । आज
ापकी दस्तार, रफ्तार और गुफ्तार कैसी हो रही है ?
ाप जरा गौर कीजिए । दस्तार यानी कपडे, रफ्तार यानी पह-
ावा और गुफ्तार यानी बातचीत । आप भारतीय हैं मगर
या आपको भारतीय भाषा प्यारी लगती है ? प्रिय न लगे
यह अभाग्य ही है । अन्य देश वाले भारत की प्रशंसा
रें और भारतीय स्वय अपने देश की अवहेलना करें, यह
भाग्य नही तो क्या है ? आज भारत के निवासी दूसरे
शो की बहुत-सी बातों पर मुग्ध हो रहे हैं । वे यह नहीं
ोचते कि दूसरे देशों की जिन बातों पर हम मुग्ध हो रहे
, वे कहां से सीखी हुई हैं । वे बातें भारत से ही अन्य
शों ने सीखी हैं । हम हमारा घर भूल गये हैं । हमारे
र में क्या क्या था, यह बात हम नही जानते । अब दूसरों
ी नकल करने चले हैं ।

एक आदमी दूसरे आदमी के यहा से बीज ले गया

मैं ज्ञान की शिक्षा देता हूं। ज्ञान प्रकाश है और
ा अंधकार। ज्ञान रूपी प्रकाश से आत्मदेव के दर्शन
ा हैं।

ज्ञान का अर्थ भी बड़ा लम्बा होता है। संसार-
ार का ज्ञान भी ज्ञान ही कहलाता है। आधुनिक
क विज्ञान भी ज्ञान ही है। किन्तु यहां कहा गया है
धर्म रूपी अर्थ मे गति कराने वाले तत्व का ज्ञान देता
अर्थात् संसार प्रपंच का ज्ञान नही देता किन्तु तत्व
ज्ञान देता हूँ। यह ज्ञान शिष्य मे भी मौजूद है मगर
त अवस्था में नही है, दबा हुआ है। उस छिपे हुए
को मैं प्रकट करने की कोशिश करूंगा। शिक्षा देकर
ज्ञान को जगाऊंगा।

दीपक में तैल भी हो और बत्ती भी हो किन्तु यदि
न का संयोग न हो तो दीपक जल नही सकता, वह
ाश नही कर सकता। इसी प्रकार हर आत्मा में ज्ञान
प्रकाश मौजूद है मगर गुरु अथवा महापुरुष के सत्संग
ा विकसित नही हो सकता। महापुरुष का सत् समा-
हमारे ज्ञान को विकसित करता है किन्तु ज्ञान हमारे
ही मौजूद है। यदि हमारे मे ज्ञान मौजूद न हो तो
क महापुरुष मिल कर भी कुछ नही कर सकते। ज्ञान,
ज रूप मे आत्मा मे विद्यमान है। महापुरुष रूपी बाह्य
मित्त कारण के मिलने से बीज वृक्ष का रूप धारण
ता है और फलता-फूलता है। यदि दीपक मे न
हो और न बत्ती हो तो दूसरे दीपक से भेंटने पर भी
जल नही सकता। तैल बत्ती होने पर दूसरा दीपक

तो नगर की शोभा नहीं हो सकती। समृद्धि के न होने से लोग भूखों मरने लगें। चम्पा नगरी धन धान्य से समृद्ध थी। धन के साथ धान्य की भी आवश्यकता है। केवल धन हो और धान्य न हो तो यह कहावत लागू होती है कि—

सोनां नी चलचलाट, अन्ननी कलकलांट।

जीवन निभाने के लिए धान्य की भी पूरी आवश्यकता होती है। धन और धान्य कहने से जीवनोपयोगी प्रायः सब वस्तुएं आ जाती हैं। जीवनोपयोगी वस्तुओं के लिए चम्पा नगरी किसी की मोहताज न थी। वहां सब आवश्यक चीजें पैदा होती थी। प्राचीन समय मे भारत के हर ग्राम मे जीवनोपयोगी चीजे पैदा होती थीं और इस दृष्टि से भारत का हर ग्राम स्वतन्त्र था। ऐसा न था कि अमुक चीज आना बन्द हो गया है, अतः अब क्या किया जाय?

पुरातन साहित्य हमे बताता है कि उस समय भारत का प्रत्येक ग्राम स्वतन्त्र था। कोई भी गांव ऐसा न था कि जहाँ आवश्यक अन्न और वस्त्र पैदा न हो। अन्न तो सब जगह पैदा होता ही था किन्तु वस्त्र भी सब गावो में बनाये जाते थे। जहां रूई न होती थी, वहा ऊन होती थी, जो रूई से भी मुलायम थी। हर ग्राम में कपडे बुनने वाले लोग रहते थे। इस प्रकार भारत का हर गाँव स्वतन्त्र था, नगर तो स्वतन्त्र थे ही। उनमे विशेष कला-प्रधान चीजें होती थीं।

चम्पा में ऋद्धि भी थी और समृद्धि भी। ऋद्धि और समृद्धि के होने पर भी स्वचक्री राजा के अभाव मे कष्ट होता

सहायक हो सकता है। कहावत भी है कि खाली चूल्हे में फूंक मारने से आंखो मे राख ही पहुंचती है। इसी प्रकार यदि आत्मा में ज्ञान शक्ति मौजूद न हो तो महापुरुष की भेंट या उनके द्वारा दी हुई शिक्षा कुछ भी कारगर नहीं हो सकती।

यहां यह कहा गया है कि "मैं शिक्षा देता हूं"। इस से हमें समझ लेना चाहिए कि हमारे मे शक्ति विद्यमान है इसी से आचार्य हमें शिक्षा देते हैं। ऊसर भूमि में बीज बोने का कष्ट जान बूझ कर महापुरुष नही करते। हमारे मे अविकसित रूप मे रही हुई शक्ति का विकास करने के लिए, अथवा राख में दबी हुई अग्नि को गुरु ज्ञान रूपी फूंक से प्रज्वलित करने के लिए, हमें गुरु की दी हुई शिक्षा बड़ी सावधानी से सुननी चाहिए।

शिक्षा देने वाले महापुरुष ने कहा है कि—मैं सिद्ध और संयति को नमस्कार करके शिक्षा देता हूं। स्वयं शिक्षक जिन्हें नमस्कार करता हो और बाद में शिक्षा शुरु करता हो, उनका स्वरूप समझ लेना आवश्यक है। पहले सिद्ध शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिए। नवकार मंत्र में एक पद में सिद्ध को नमस्कार किया गया है और शेष

४ : धर्म का अधिकारी

" मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी...... । "

यह भगवान् मल्लिनाथ की प्रार्थना है । यदि इस र्थना के विषय में कोई महावक्ता सिद्धात की खोज करके ाख्यान दे तो बहुत लोगों की उल्टी समझ दूर हो जाय, ा मेरा ख्याल है । मुझे शास्त्र का उपदेश करना है ः इस विषय मे इतना ही कहता हूँ कि भक्ति और र्थना के मार्ग में पुरुषों को अभिमान नही करना चाहिए। भिमान भूले बिना भक्तिमार्ग पर नहीं चला जा सकता। ंकार दूर किए बिना भक्तिमार्ग प्राप्त नही हो सकता। पुरुष हैं, इस बात का अहकार त्याग कर, चाहे स्त्री चाहे पुरुष, जो भी महापुरुष हुए हैं, उन सब की भक्ति तल्लीन हो जाना चाहिए ।

बहुत से पुरुष स्त्रीजाति को तुच्छ गिनते हैं और ने को वड़ा मानते हैं किन्तु यह उनकी भूल है । दुनियां सब से वडा पद तीर्थङ्कर का है। जब कि स्त्री तीर्थंकर सकती है, वैसी हालत मे वह तुच्छ कैसे मानी जा सकती और पुरुष को किस बात का अभिमान करना चाहिए ?

ी शुक्लध्यान रूपी जाज्वल्यमान अग्नि से जला दिया है, सिद्ध है। अथवा 'षिधुगतौ' से भी सिद्ध बन सकता जिस स्थान पर पहुंच कर फिर वहां से नहीं लौटना ा, उस स्थान पर जो पहुंच गये है, उन्हें भी सिद्ध ते हैं।

कुछ लोग ऐसा कहते है कि सिद्ध होकर भी पुनः र मे लौट आते हैं। जैसे कहा है:—

ज्ञानिनो धर्म तीर्थस्य, कर्त्तारः परमं पदम् ।
गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि भव तीर्थ-निकारतः ॥

अर्थात्—धर्म रूपी तीर्थ के कर्त्ता ज्ञानी लोग अपने का पराभव देख कर परम पद को पहुंच कर भी पुनः र में लौट आते हैं।

यदि सिद्धि स्थल में पहुंच कर भी वापस संसार में ाते हो तो वह सिद्धि स्थल ही न कहा जायगा। –मुक्ति तो उसे ही कहते हैं कि जहां पहुंच कर वापस लौटना पड़ता। कहा है—

यत्र गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।

अर्थात्—जहां जाकर वापस न आना पड़े वह परम है और वही सिद्धो का स्थान है। उसे ही सिद्धि हैं। जहां लाकर वापस आना पड़े, वह तो ससार ।

व्युत्पत्ति के अनुसार सिद्ध शब्द का तीसरा अर्थ भी है। 'षिधु सराद्धौ' जो कृतकृत्य हो चुके हैं, जिनको

। है। मैले कपडे पर रंग नही चढ़ता, मैले कपड़े पर रंग चढाने लिए पहिले उसे साफ करना पडता है। इसी प्रकार हृदय रूपी त्र यदि मैला हो तो उस पर उपदेश रूपी रग नही चढ सकता। बात स्वाभाविक है। मुझे यकीन है कि आपके सब ड़े मलीन नही हैं अर्थात् आपका हृदय सर्वथा मलीन ी है। यदि सर्वथा मलीन होता तो आप यहा व्याख्या रणार्थ भी उपस्थित न होते। आप यहा आये हैं, इससे प्रकट है कि आपका हृदय सर्वथा गन्दा नही है। जो ड़ी बहुत गदगी भी हृदय मे रही हुई है, उसे दूर किए ना धर्म का रग अच्छी तरह नही चढ़ सकता।

शास्त्रकारो का कथन है कि धर्मस्थान पर जाने के ं घर से निकलते ही पहले 'निस्सीही' शब्द का उच्चारण रना चाहिए। धर्मस्थान पर पहुच कर भी निस्सीही हना चाहिए। फिर गुरु के पास जाकर भी निस्सीही हना। इस प्रकार तीन बार निस्सीही शब्द का उच्चारण रने का क्या कारण है ? घर से निकलते वक्त निस्सीही हने का मतलब यह है कि धर्मस्थान पर जाने के पूर्व ही ासारिक प्रपञ्चपूर्ण विचारों को मन से निकाल देना ाहिए। निस्सीही शब्द का अर्थ है, पापपूर्ण क्रियाओं का नषेध करना, उनको रोक देना।

जो संसार के कामों और विचारों को छोड़ कर र्मस्थान पर जाता है, वही पुरुष धर्मस्थान में पहुंचने के मकसद को सिद्ध कर सकता है। जो घर से व्यवहार के प्रपञ्चों को दिमाग में रख कर धर्मस्थान पर जाता है, वह वहां जाकर क्या करेगा ? वह धर्मस्थान में भी

अब कोई काम करना बाकी न रहा है, वे भी सिद्ध कहे जाते हैं।

जैसे पकी हुई खिचड़ी को पुनः कोई नहीं पकाता। यदि कोई पकी हुई खिचड़ी को पकाता है तो उसका यह काम व्यर्थ समझा जाता है। इसी प्रकार जिसने सब काम कर लिए हैं और करने के लिए शेष कुछ नहीं रहा है, वह सिद्ध है। इस प्रकार सिद्ध शब्द के ये तीन अर्थ हैं। शब्द एक ही है किन्तु जैसे एक शब्द मे नाना घोष होते हैं उसी प्रकार एक शब्द के अनेक अर्थ भी हो सकते हैं।

सिद्ध शब्द का एक चौथा अर्थ भी किया जाता है। 'षिधून शास्त्रे मांगल्ये वा'। इसका अर्थ है-जो दूसरों को कल्याण मार्ग का उपदेश देता है और उपदेश देकर मोक्ष को पहुंचा है, वह साक्षात् सिद्ध है। शास्ता अर्थात् दूसरों को उपदेश देने वाला।

यदि दूसरे को उपदेश कर मुक्ति जाने वाले को सिद्ध कहा जायगा तो अरिहन्त होकर जिन्होंने मुक्ति पाई है, वे ही सिद्ध कहे जायगे अन्य नहीं। किन्तु सिद्ध तो पन्द्रह प्रकार के कहे गये हैं। इसके उपरान्त केवली को

ाय यह कि मैं समस्त सांसारिक प्रपञ्चों का निषेध
रता हूँ । निस्सीही का उच्चारण भी कर लिया गया हो
ौर अभिगमन भी कर लिए गये हो किन्तु यदि मन ससार
ी बातो मे गुंथा हुआ ही रहा तो धर्मस्थान मे पहुचने
ा उद्देश्य हासिल नही हो सकता । अतः मन को एकाग्र
रके यह निश्चिय करना चाहिए कि हमे श्रेय सिद्ध
रना है ।

सारांश यह कि यदि आपको सिद्धांत सुनने की रुचि
तो मन को स्वच्छ वना कर आईये । मन स्वच्छ बनाने
ा भार मुझ पर डाल कर मत आईये । धोबी का काम
ावी करता है और रगरेज का काम रंगरेज करता है ।
नों का काम एक पर डालने से वजन बढ जाता है ।
आप पर धर्म के सिद्धान्तो का रंग चढाना चाहता हूँ ।
ा चढाया जा सकता है । किन्तु शर्त यह है कि आपका
नरूपी वस्त्र स्वच्छ होना चाहिये । मन स्वच्छ बना कर
ाने का काम आपका है और उस पर धर्म का रग चढाने
ा काम मेरा है । धोवी वस्त्र को जितना साफ निकाल
र लायेगा, रंगरेज उतना ही आवदार रंग चढ़ा सकेगा ।
ारेज को यश दिलाने का काम धोबी पर निर्भर है ।
ाप लोगो की तरह यदि मुझे भी मान-प्रतिष्ठा की चाह
दय में वनी रही तो मैं धर्म का सच्चा उपदेश न दे
ूंगा। धर्म का उपदेश देने के लिये उपदेशक को भी स्वच्छ
नना चाहिए । उपदेशक और श्रोता दोनों स्वच्छ हों, तभी
र्म का रंग अच्छी तरह चढ़ सकता है ।

इस अध्ययन का विपय तो वता दिया गया है ।

इस का उत्तर यह है कि जो महात्मा मौन रहकर
वन व्यतीत करते हैं तथा जिन्हे उपदेश देने का अवसर
न मिला हो, वे भी जगत् का कल्याण करते ही हैं।
के लिए भी यह शास्ता शब्द लागू होता है। ध्यान
न द्वारा मोक्ष प्राप्त करने वाले महात्मा भी संसार को
क्षा देते हैं और वह शिक्षा भी महान् है। संसार को
न शिक्षा की भी बहुत आवश्यकता है। हिमालय की गुफा
बैठ कर या किसी एकान्त शान्त स्थान पर में ध्यानस्थ
कर एक योगी ससार को जो सहायता पहुंचाता है और
सके द्वारा जगत् का जो कल्याण साधता है, उसकी बरा-
री बहुत उपदेश झाड़ने वाले किन्तु आचरण-शून्य व्यक्ति
भी नहीं कर सकते। यह संसार अधिकतर न बोलने
लों की सहायता से ही चलता है। मूक सृष्टि के आधार
र ही यह बोलने वाली सृष्टि निर्भर रही है। पृथ्वी पानी
ादि के जीव मूक ही हैं। ये मूक जीव ही इस बोलती
ई सृष्टि का पालन करते हैं। इस से यह बात समझ मे
ा जायगी कि उपदेश न देने वाले महात्मा भी जगत् का
ल्याण करते ही हैं। वासनाओं से रहित उनकी शान्त,
ान्त और संयत आत्मा से वह प्रकाश-आध्यात्मिक तेज
नकला है कि जिससे आधि-व्याधि और उपाधि से संतप्त
ात्माओं को अपूर्व शांति मिल सकती है।

गुरोस्तु मौनं शिष्यास्तु छिन्न-संशयाः

अर्थात्—गुरु के मौन होने पर भी उनकी आकृति
ादि के दर्शन मात्र से संशय छिन्न भिन्न हो जाते हैं।
ास्तिक से नास्तिक शिष्य भी गुरु की ध्यानावस्थित

ाय यह कि मैं समस्त सासारिक प्रपञ्चों का निषेध
रता हूँ । निस्सीही का उच्चारण भी कर लिया गया हो
ोर अभिगमन भी कर लिए गये हो किन्तु यदि मन संसार
ी बातो मे गुंथा हुआ ही रहा तो धर्मस्थान मे पहुंचने
ा उद्देश्य हासिल नही हो सकता । अतः मन को एकाग्र
रके यह निश्चिय करना चाहिए कि हमे श्रेय सिद्ध
रना है ।

साराश यह कि यदि आपको सिद्धांत सुनने की रुचि
तो मन को स्वच्छ वना कर आईये । मन स्वच्छ बनाने
ा भार मुझ पर डाल कर मत आईये । धोबी का काम
ावी करता है और रगरेज का काम रंगरेज करता है ।
नो का काम एक पर डालने से वजन बढ जाता है ।
आप पर धर्म के सिद्धान्तो का रंग चढ़ाना चाहता हूँ ।
ा चढाया जा सकता है । किन्तु शर्त यह है कि आपका
नरूपी वस्त्र स्वच्छ होना चाहिये । मन स्वच्छ बना कर
ाने का काम आपका है और उस पर धर्म का रग चढाने
ा काम मेरा है । धोबी वस्त्र को जितना साफ निकाल
र लायेगा, रगरेज उतना ही आबदार रंग चढ़ा सकेगा ।
ारेज को यश दिलाने का काम धोबी पर निर्भर है ।
ाप लोगों की तरह यदि मुझे भी मान-प्रतिष्ठा की चाह
दय में बनी रही तो मैं धर्म का सच्चा उपदेश न दे
कूंगा । धर्म का उपदेश देने के लिये उपदेशक को भी स्वच्छ
नना चाहिए । उपदेशक और श्रोता दोनो स्वच्छ हों, तभी
र्म का रंग अच्छी तरह चढ सकता है ।

इस अध्ययन का विषय तो बता दिया गया है ।

प्राकृति से आस्तिक बनने के दृष्टान्त मौजूद हैं । अतः यह बात सिद्ध हो जाती है कि मौखिक उपदेश न देने वाले महात्मा भी जगत् का कल्याण करते ही हैं । उनके आचरण से जगत् बहुत शिक्षा ग्रहण करता है ।

दूसरी बात सिद्ध भगवान मोक्ष गये है, इसी से लोग मोक्ष की इच्छा करते हैं । यदि वे मोक्ष न पहुंचते तो कोई मोक्ष की इच्छा नहीं करता । वे महात्मा मन, वचन और काया को साध कर मोक्ष गये और इस तरह संसार के लोगों को अपना आदर्श रख कर मोक्ष का मार्ग बताया । संसार के प्राणियों में मुक्ति की ख्वाहिश पैदा की । अतः उनको शास्ता कहा जा सकता है ।

'षिधून् शास्त्रे मांगल्ये वा' में शास्ता के साथ ही साथ जो मांगलिक हैं वे भी सिद्ध कहे गये हैं । मांगलिक का अर्थ पाप नाश करने वाला होता है । 'मां अर्थात् पापं गालयतीति मांगलिकः' । जो पाप का नाश करने वाले हैं, वे सिद्ध है ।

यहां यह शंका होती है कि जो पाप का नाश करने वाला है, वह सिद्ध है तो बड़े बड़े महात्मा, जो कि पाप के नाश करने वाले थे, उनको पाप का उदय

नहीं है ? जरूरत अवश्य है। आप यहां किसी सांसारिक कामना की पूर्ति करने के लिये नहीं आये हैं किन्तु धर्म करने की आपकी रूचि है, अतः आये हैं। इस प्रकार इस धर्म शिक्षा से आप गृहस्थो का भी प्रयोजन है। यदि यह शिक्षा केवल साधुओ के काम की ही होती तो साधु लोग किसी एकान्त शान्त स्थान में बैठ कर चर्चा कर लेते। आप गृहस्थों के बीच मे आकर इसका वर्णन न करते। गृहस्थों को भी इस शिक्षा की आवश्यकता है, यह अनुभव करके ही आपको यह सुनाई जा रही है। श्रेणिक राजा नवकारसी तप भी न कर सका था किन्तु यह शिक्षा सुन हृदय मे धारण करके तीर्थङ्कर गोत्र बाध सका था। आप लोग भी श्रेणिक के समान गृहस्थ हो, अतः इस शिक्षा की जरूरत है।

प्रयोजन बता दिया गया है। अब इस अध्ययन के अधिकारी का विचार करना है। कौन २ व्यक्ति इस अध्ययन की शिक्षा सुनने या ग्रहण करने के पात्र हैं ? जिस प्रकार सूर्य सबके लिये है, सब उसका प्रकाश ग्रहण कर सकते हैं। किसी के लिये भी प्रकाश ग्रहण की मनाही नही है। उसी प्रकार यह अध्ययन सबके लिये है। इतना होने पर भी सूर्य का प्रकाश वही देख सकता है, जिसके आंखें हों और वे खुली हों तथा विकार-रहित हों। जिसकी आखों मे उल्लू की तरह किसी प्रकार का विकार हो, वह सूर्य का प्रकाश ग्रहण नही कर सकता। इस अध्ययन की शिक्षा का अधिकारी भी वही है, जिसके हृदय-चक्षु खुले हुए हैं। किन्ही लोगों के हृदय-चक्षु खुले हुए होते हैं और किन्ही के अज्ञान रूपी आवरण से ढके हुए होते हैं। जिनके

ने व्यक्ति के प्रति राग-द्वेष-पूर्ण भावना लाता है, तब उसकी मांगलिकता नष्ट होती है। राग द्वेष करने के रण वह मंगल रूप न रह कर अमंगलरूप बन जाता है। न्तु जो महापुरुष कष्ट देने वाले के प्रति प्रेम की वर्षा ते हैं, उसके लिए सद्भाव रखते हैं, उसके सुधार की मना करते हैं, वे सदा मांगलिक ही हैं। गजसुकुमार न ने सिर पर अग्नि के अंगारे रखने वाले का मन में ा उपकार माना कि इस सोमिल ब्राह्मण ने मेरी शीघ्र क्ति में बडी सहायता की है। तथा भगवान् महावीर ने ाने पर तेजोलेश्या फेकने वाले गोशालक पर क्रोध नहीं या था। वे मंगलरूप ही बने रहे। इस प्रकार उन में गलिकता घटित होती है। पूर्वजन्म के बैर बदले के रण वेदना या दुःख आदि हो सकते हैं मगर उन वेद- ओं और दुःखों में जो अविचल रहता है, वह सदा गलिक है।

सिद्ध भगवान् मे भाव मांगलिकता है, द्रव्य मांगलिकता ही है। आप लोग द्रव्य मंगल देखते हैं। जिसमें भाव गल हो वह द्रव्य मंगलजन्य चमत्कार दिखा सकता है न्तु सिद्धि पद को पाने वाले महात्मा ऐसा नही करते। ऊंचे पहुंचे हुए महात्मा ही चमत्कार दिखाने के झंझट पड़ते हैं। वे अपनी आत्मशांति में मशगूल रहते हैं। दि उन्हें चमत्कार दिखाने की इच्छा होती तो वे चक्रवर्ती ा राज्य और सोलह २ हजार देवों की सेवा का त्याग ों करते और संयम क्यों लेते ? चमत्कार करने वाले ा हो स्वयं सेवक हों तब क्या कमी रह जाती है।

जिस प्रकार सूर्य की कोई पूजा करता है और कोई

धर्म का उपदेश कर सकते हैं। पहले यह देखना जरूरी है कि अमुक ग्रन्थ या पुस्तक का रचयिता कौन है ? ग्रन्थकार की प्रामाणिकता पर ग्रंथ की प्रामाणिकता है। आज कल के बहुत से अधकचरे विद्वान् कहते हैं कि ग्रंथकार के व्यक्तिगत जीवन से तुम्हे क्या मतलब है ? तुम्हे तो वह जो शिक्षा देता है, उसे देखो कि वह ठीक है या नही। किन्तु ऐसा कहने वाले व्यक्ति भ्रम मे हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि धर्म का उपदेशक वही हो सकता है, जो अपनी आत्मा को गुप्त रखता हो, जो सयमरूपी ढाल मे इन्द्रियो को उसी प्रकार काबू मे रखता हो, जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को ढाल मे रखता है। इन्द्रियदमन करने वाला ही सच्चा उपदेशक या लेखक हो सकता है।

किसने इन्द्रियदमन कर लिया है और किसने नहीं किया है, इसकी पहचान यह है कि जिसकी आंखों में विकार न हो, शारीरिक चेष्टाए शान्त और पापशून्य हो। इन्द्रियदमन का अर्थ आख, कान आदि इन्द्रियों का नाश कर देना नहीं है किन्तु उनके पीछे रही हुई पाप-भावना को मिटा देना है। आंख से धर्मात्मा भी देखता है और पापी भी। किन्तु दोनों की दृष्टि में बड़ा अन्तर होता है। 'धर्मात्मा पुरुष किसी स्त्री को देख कर उसके सुधार का उपाय सोचेगा और पापी पुरुष उसी स्त्री को देख कर अपनी वासना-पूर्ति का विचार करेगा। जिस प्रकार घोड़े को शिक्षा देकर मन मुताबिक चलाया जाता है, उसी प्रकार जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को मन माफिक चला सकता है, उनका गुलाम नहीं किन्तु मालिक बन सकता है, वही इन्द्रियदमन करने वाला कहा जाता है। घोड़े का मालिक लगाम के जरिये घोड़े

उसे गाली देता है। किन्तु सूर्यपूजा करने वाले और गाली देने वाले को समान रूप से प्रकाश प्रदान करता है। वह पूजा करने वाले पर प्रसन्न नहीं होता और गाली देने वाले पर अप्रसन्न भी नहीं होता। दोनों पर समभाव रखता हुआ अपना प्रकाश-प्रदान रूप कर्त्तव्य करता रहता है। इसी प्रकार सिद्ध भगवान् भी किसी की बुराई पर ध्यान न देते हुए सब का कल्याण रूप मंगल करते हैं।

सिद्ध शब्द का पाँचवां अर्थ यह भी होता है कि जिनकी आदि तो है लेकिन अन्त नहीं है।

गुरु महाराज शिष्य से कहते हैं कि मैं ऐसे सिद्ध भगवान् को नमस्कार करके धर्मरूपी अर्थ का सच्चा मार्ग बताता हूँ।

सिद्ध को नमस्कार करके सूत्रकार भाव से संयति को नमस्कार करते हैं। संयति शब्द का अर्थ साधु होता है। साधु दो प्रकार के हो सकते हैं। द्रव्य-साधु और भाव-साधु। यहाँ शास्त्रकार द्रव्य-साधु को नमस्कार नहीं करते मगर जो भाव-साधु हैं, उन्हें नमस्कार करते हैं। शास्त्र के रचने वाले गणधर चार ज्ञान के स्वामी थे फिर भी वे उनके

ाना उपेय है। इस अध्ययन का उपायोपेय सम्बन्ध है
प्राप्ति और इसके द्वारा मुक्ति। मुक्ति उपेय है और
प्राप्ति उपाय है।

संसार में उपाय मिलना ही कठिन है। यदि उपाय
ा जाय और वह किया जाय तो रोग मिट सकता है।
टर और दवा दोनो का योग होने पर बीमारी चली
ी है। किसी बाई के पास रोटी बनाने का सामान
्द न हो तो वह रोटी कैसे बना सकती है? यदि रोटी
ने की सब सामग्री तैयार हो तो रोटी बनाने मे कोई
ाई नही हो सकती।

रोटी बनाने की सब सामग्री तैयार रखी हो परन्तु
कर्त्ता रोटी बनाने वाला किसी प्रकार का प्रयत्न न
तो रोटी कैसे बन सकती है? आटा और पानी अपने
नही मिल सकते और न रोटी स्वयं पक सकती है।
ी के उद्योग के किये बगैर सब साधन या उपाय किस
र के? आप अपने लिए विचार करिये कि आपको क्या
ना चाहिए? गफलत की नीद छोड कर जागृत हो
ये जिससे धर्मकरणी के लिए मिले हुए साधन या
य व्यर्थ न हो जायं। आपको आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल और
ष्य जन्म मिले हैं। यह क्या कम सामग्री है? आपकी उम्र
पक चुकी है। आप तत्वज्ञान समझ सकते हो। बहुत
लोग तो कच्ची उम्र मे ही चल बसते हैं। यदि आप
बचपन मे ही चल बसते तो आपको कौन उपदेश देने
ा? बालक, रोगी और अशक्त धर्म के अधिकारी नहीं
ा जाते। उनको कोई धर्म का उपदेश नही करता।

इस बीसवें अध्ययन में जो कुछ कहा गया है वह शास्त्रकार ने संक्षेप में इस पहली गाथा मे ही कह ा है । पहली गाथा में सारे अध्ययन का सार किस ार दिया गया है यह बात कोई विशेषज्ञ ही समझ ता है । केवल जैन सूत्रों के विषय में ही यह बात नहीं केन्तु जैनेतर ग्रन्थों मे भी यह परिपाटी देखी जाती है सूत्र के आदि में ही सारे ग्रंथ का सार कह दिया ा है ।

मैंने कुरानशरीफ का अनुवाद देखा है । उसमें बताया ा है कि १२४ इलाही पुस्तको का सार तोरत, एंजिल, ब और कुरान इन पुस्तको में लाया गया और इन तों का सार कुरान मे लाया गया है । सारे कुरान का र उसकी पहली आयत मे हैं :—

बिस्मिल्लाह रहिमाने रहीम

सारे कुरान का सार एक ही आयत में कैसे समाया ा है । यह बात समझने लायक है, जब कि इस आयत रहमान और रहीम दोनों आ गये तब कुरान में और ा रह जाता है ? हिन्दू धर्म ग्रन्थो में भी कहा गया है 'दया धर्म का मूल है' । यद्यपि इस शब्द मे केवल दो अक्षर हैं किन्तु इसमे धर्म का सपूर्ण सार आ गया है । ा मे सपूर्ण धर्म का सार आ गया है, यह बात कुरान, ान, वेद या आगम से तो सिद्ध होती ही है मगर हमारी त्मा इसका सब से बड़ा प्रमाण है ।

मान लीजिये कि आप एक निर्जन जंगल मे जा रहे

दो मित्र जंगल मे जा रहे थे । उन में से एक थक
या । थकने के साथ ही उसे कुछ आधार मिल गया ।
ास ही अच्छे घने वृक्ष हैं । सुन्दर नदी बह रही है, सपाट
ट्टान सामने है और हवा भी शीतल मन्द और सुगन्ध
क्त चल रही है । यह सब अनुकूल सामग्री देख कर थका
आ मित्र सो जाने के लिए ललचाया । वह मन मे मन-
बे बाधने लगा कि यहाँ बैठ कर शीतल वायु का सेवन करना
ाहिए । सुन्दर फल खाना और पुष्पों की सुगन्ध लेना
ाहिए । नदी की कलकल आवाज सुनते हुए निद्रा लेकर
कृति के सुख का अनुभव करना चाहिए ।

दूसरा मित्र प्रकृति-ज्ञान मे निपुण था । वह जानता
ा कि ये फूल कैसे हैं, यह हवा कैसी है तथा नदी की
ह कल-कलाट क्या शिक्षा दे रही है ? यह स्थान कितना
पद्रवयुक्त है, यह भी वह जानता था । उस ज्ञानी मित्र ने
ापने भूले हुए दोस्त से कहा कि हे प्रिय मित्र ! यह स्थान
ोने के लिए उपयुक्त नही है । जल्दी उठ खड़ा हो और
ीघ्र ही यहा से भाग चल । एक क्षण मात्र का भी
वलम्ब मत कर । यहा तीन जने पीछे पड़े हुए हैं । जिन
ल-फूलो को देख कर तेरा जी ललचाया है, वे फल-फूल
वषयुक्त हैं । यहां की हवा भी विषैली है । जो वातावरण
झे अभी आकर्षित कर रहा है, वही थोड़ी देर में तुझे
ववश बना देगा और तेरा चलना-फिरना भी बंद हो
ायगा । यह नदी भी शिक्षा दे रही है कि जिस प्रकार
ल-कल करता हुआ मेरा पानी प्रतिक्षण वहता चला जा
हा है, उसी प्रकार तेरी आयु भी क्षण-क्षण घटती जा
ही है ।

है। यहां कोई व्यक्ति नंगी तलवार लेकर आपके सामने उपस्थित होता है और आपकी जान लेना चाहता है। उस समय आप उस व्यक्ति में किस बात की खामी अनुभव करेंगे ? यही कि उस व्यक्ति में दया नहीं है। ठीक उसी वक्त एक दूसरा व्यक्ति उपस्थित होता है और आप दोनों के बीच में होकर उस आततायी–हत्यारे से कहता है कि ऐ पापी ! इस व्यक्ति को मत मार। यदि तू खून का ही प्यासा है तो मुझे मार कर अपनी प्यास बुझाले मगर इस व्यक्ति को मत मार। कहिये, यह दूसरा व्यक्ति आपको कैसा मालूम देगा ? इसमें आपको क्या विशेषता नजर आयगी ? आप कहेंगे यह दूसरा व्यक्ति बड़ा दयालु है। इस में दया बसी है। इस व्यक्ति में दया है और उस व्यक्ति में हिंसा है। यह बात आपने कैसे जानी ? किस प्रमाण से जानी। मानना होगा कि इसमें हमारी आत्मा ही प्रमाण है ? आत्मा अपनी रक्षा चाहता है अतः रक्षक और भक्षक करने वाले को वह तुरन्त पहचान जाती है। दया–अहिंसा आत्मा का धर्म है। यदि आपको धर्मात्मा बनना हो तो दया को अपनाइये। शास्त्र में कहा है—

एवं खु नाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचण ।

उसे क्या कहेंगे ? आप कहेगे कि वह बड़ा अभागा था जो ऐसे सुसंयोग का लाभ न ले सका। आपके समक्ष भी भगवान् नाम रूपी नौका खड़ी है। सद्गुरु आपको समझा रहे हैं कि इस नौका पर सवार हो कर अनादिकालीन दुःख दर्द को मिटा लो। अधिक न कर सको तो कम से कम इस नौका पर सवार हो जाइये।

अभी मुनि श्रीमलजी ने आपको सुनाया है कि एक व्यक्ति साधु के स्थान पर आकर भी बुरे कर्म बांध सकता है और दूसरा वेश्या के भवन पर जाकर भी कर्मों की निर्जरा कर सकता है।। बुरी भली भावनाओं की अपेक्षा से यह कथन ठीक है। फिर भी यह मत समझ लेना कि साधु का स्थान बुरा है और वेश्या का अच्छा। वेश्या के पर जाकर कोई विरला व्यक्ति ही बच सकता है। अतः स्थान की दृष्टि से वेश्या का स्थान बुरा और साधु का स्थान अच्छा है। लेकिन जो स्थान अच्छा है, उस साधु स्थान पर जाकर यदि कोई व्यक्ति बुरे विचार करे अथवा दूसरों की निन्दा करे तो यह कितनी बुरी बात है। कदाचित् कोई साधु स्थान पर रहे, उतनी देर तक अच्छे विचार रखे और वहा से अलग होते ही बुरे बिचार करने लग जाय, सुनी या सीखी हुई शिक्षा को भूल जाय तो भी कोई लाभ नही गिना जा सकता। आप कहेंगे कि यह हमारी कमजोरी है कि हम आपकी दी हुई शिक्षाएं शीघ्र भूल जाते हैं। मैं कहता हूँ यह केवल आपकी ही कमजोरी नही है परन्तु मेरा भी कच्चापन शामिल है। मेरी दी हुई शिक्षा को आप लोग याद नही रख सकते, इसमे मैं भी अपनी कमजोरी समझता हूँ। मैं मेरी कमजोरी दूर करने का

यदि तू चाहता है कि मुझ पर कोई जुल्म न करे जिन्हे तू जुल्म मानता है, वे जुल्म तू स्वयं दूसरों पर कर।

यदि कोई आपको मार पीटकर आपके पास की छीनना चाहे या झूठ बोल कर आपको ठगना चाहे वा आपकी बहू बेटी पर बुरी नजर करे तो आप उसे ी मानोगे न ? ऐसों बातें समझाने के लिए किसी क या गुरु की जरूरत नही होती। आत्मा स्वयं गवाही ता है कि अमुक बात भली है या बुरी। ज्ञानी कहते क जिन कामो को तू जुल्म मानता है वे दूसरों के मत कर। किसी का दिल न दुखाना, झूठ न बोलना, ो न करना, पराई स्त्री पर बुरी निगाह न करना और श्यकता से अधिक भोगोपभोग वस्तुएं संग्रह करके न ा ये पांच महानियम हैं जिनके पालन करने से कोई ी नही बनता। जो बात हमें अच्छी लगती है वही के लिए करनी चाहिये। यदि आप जुल्मी न बनोगे तो ा भी जुल्म करना छोड देगा। इस बात को जरा ाई से सोचिये। केवल दूसरे के जुल्मों की तरफ ही र न करो, अपने आपको भी देखो। करीमा में कहा है:-

चहल साल उम्रे अजीजो गुजश्त।
मिजाजे तो अज हाल तिफली न गश्त॥

यानी तेरी उम्र के चालीस साल बीत गये तब भी बचपन नहीं गया। अब तो बचपन छोड़ कर बात हो। जिनको तुम जुल्म या अत्याचार मानते हो, वे यदि दूसरे त्यागे या न त्यागें किन्तु यदि तुम्हें धर्मी ा है तो तुम स्वय ऐसे काम छोड़ दो।

क नहीं लेते बल्कि धर्म और परमात्मा का 'बायकाट' करते , वे लोग सुखी देखे जाते हैं । इस सवाल का जवाब यह कि केवल परमात्मा का नाम लेना ही सुखी बनने का ारण नही है । किन्तु नामस्मरण के साथ परमात्मा के ताये हुए नियमो का पालन करना भी जरूरी है । कोई कट रूप में परमात्मा का नाम न लेता हो किन्तु उसके ताये नियमों का पालन करता हो तो वह सुखी होगा और ोई नियमों का पालन न करे और खाली नाम-रटन्त ारता रहे तो उससे दुःख दूर नही हो सकते । जो प्रकट प से नाम नही लेता किन्तु नियम पालन करता है, वह ख के साधन जुटाता है । अतः यह कहना कि परमात्मा ा नाम लेने से या भजन करने से कोई दुःखी है, कतई लत धारणा है । भजन के साथ नियम आवश्यक है । क आदमी ने गाड़ी में बैठे हुए एक पहलवान को देखा । ख कर उसने यह धारणा बाध ली कि गाड़ी में बैठने से ादमी पहलवान हो जाता है । उसे इस बात का भान न ा कि पहलवान तो विशेष प्रकार की कसरत करने से नता है । इसी प्रकार नियम पालने वाला प्रकट में नाम ही लेता अतः यह कह डालना कि नाम न लेने से सुखी , भ्रमपूर्ण विचार है । परमात्मा का भजन तो करना गर उसके बताये नियम न पालना, कैसा काम है ? इस ात को एक दृष्टान्त से समझाता हूँ ।

एक सेठ के दो स्त्रियां थी । बड़ी स्त्री गादी लगा र हाथ मे माला लेकर अपने पति का नाम जपती रहती ी । दिन भर मोतीलालजी मोतीलालजी की रटन्त लगाती हती और घर का कोई काम न करती थी । किन्तु इसके

कोई राजा यह कभी नहीं सोचता कि मैं अकेला ही राजा क्यों हूँ, सब लोग राजा क्यों नहीं हैं? दूसरे ने जुल्म त्यागे हैं या नहीं, इसका विचार न करके जो बात बुरी है, उसे हमें त्याग देना चाहिए।

सिद्ध या बिस्मिल्लाह कह कर किसी बात के शुरु करने का क्या अर्थ है? क्या सिद्ध से कोई बात छिपी हुई रह सकती है? सिद्ध का नाम लेकर कोई कार्य शुरु किया जाय, किन्तु हृदय में पाप रखा जाय; कपटपूर्वक कार्य किया जाय तो क्या सिद्ध का नाम लेना सार्थक है? कभी भी नहीं। रहम और रहमान को जान लेने पर कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता।

विद्वान् लोग कहते हैं कि—कयामत के वक्त या और किसी वक्त जो मोमिन और काफिर पर रहम करता है, वह रहमान है। वह रहमान इसीलिए बिना भेद भाव के सब पर दया करता है। कोई कह सकता है कि रहमान मोमिनों पर दया करे यह तो ठीक है मगर काफिरों पर दया कैसी? काफिरों पर क्यों दया की जाय? इसका उत्तर यह है कि मोमिन और काफिर अपने अपने कामों से होते। कोई हिन्दू है अतः काफिर और क

को मालूम है कि वे किस लिए नाम लेते हैं ? वे नाम जपना और पराया माल अपना' करने के लिए लेते हैं । इस तरह परमात्मा का नाम लेना दिखावा है । नाम का महत्व नियम-पालन के साथ है ।

मतलब यह है कि कोई प्रकट में प्रभुनाम लेता है कोई प्रकट में नाम न लेकर नियम-पालन करता है । भक्ति नाम न लेने वाले में भी मौजूद है क्योकि वह व्य का पालन करता है । अतः ऐसे व्यक्ति को सुखी कर यह न मान बैठना चाहिए कि यह नाम न लेने खी है । आपके सामने भगवद् भक्ति की नाव खडी है । बैठ जाओ और भक्ति का रंग चढालो ।

ऐसा रग चढा लो दाग न लागे तेरे मन को ।

शंन चरित्र—

सच्चे भक्त कैसे होते हैं, इसका दाखला चरित्र द्वारा के सामने रखता हूं । कल कहा गया था कि सुदर्शन धन्यवाद दिया गया है । सुदर्शन को भक्ति का बाह्य- रखने के कारण धन्यवाद नही दिया गया किन्तु भक्ति ंग का पूरी तौर से पालन करने के कारण धन्यवाद गया है ।

सुदर्शन का जन्म चंपापुरी में हुआ था । चम्पापुरी ाजा दधिवाहन था । सुदर्शन के शीलपालन के साथ तथा कथा से सम्बन्ध रखने वाले पात्रों का परिचय करना ।

तु जिसमें रहम–दया हो, शैतानियत का अभाव हो, वह मन है और जिसमें रहम–दया न हो, शैतानियत हो काफिर है।

शास्त्र में यह कहा गया है कि—मैं कल्याण की क्षा देता हूँ। क्या यह शिक्षा केवल साधुओं के लिए ही अथवा केवल श्रावकों के लिए ही, या सब के लिए है? सूर्य बिना भेद भाव के सब के लिए प्रकाश प्रदान ता है तब जिन भगवान् के लिए—

सूर्यातिशायि महिमासि जिनेन्द्र लोके

हे जिनेन्द्र! जगत् में आपकी महिमा सूर्य से भी कर है, इत्यादि कहा गया हो, वे भगवान् जगत् शिक्षा देने मे क्या भेद भाव कर सकते हैं? अनन्त महिमा भगवान् की वाणी किसी व्यक्ति विशेष के लिए न ी। सब के लिए होगी।

सूर्य सब के लिए प्रकाश करता है, फिर भी यदि ई यह कहे कि हमे सूर्य प्रकाश नही देता, अन्धेरा देता तो क्या यह कथन ठीक हो सकता है? कदापि नही। मगादड़ और उल्लू यह कहे कि हमारे लिए सूर्य किस म का? सूर्य के उदय होने पर हमारे लिए अधिक ेरा छा जाता है। इसके लिए कहना होगा कि इस में का कोई दोष नही हैं, वह तो सब के लिए समान रूप प्रकाश प्रदान करता है। किन्तु यह उनकी प्रकृति का है कि जिससे प्रकाश देने वाली किरणें भी उनके लिए कार का काम देती है।

ोना चाहिए इस वात का जरा विचार करिये ।

नाटक मे पुरुष स्त्री का वेष धारते हैं और स्त्री की रह नखरे दिखाने की चेष्टा करते हैं । ऐसा करने से भी २ पुरुष बहुत अंशो में अपना पुरुषत्व भी खो बैठते । नाटक मे स्त्री बने हुए पुरुष के हाव-भाव देख कर ाप लोग बड़े प्रसन्न होते हैं । जो खुद अपना पुंस्त्व भी ो चुका है, वह दूसरो को क्या शिक्षा देगा ?

आजकल लोगो को नाटक सिनेमा का रोग बहुत री तरह लगा हुआ है । घर मे चाहे फाकाकसी करना ड़े मगर सिनेमा देखने के लिए तो जरूर तैयार हो जायेंगे। नये खर्च होने के उपरान्त नाटक सिनेमा देखने से क्या २ ानियां होती है, इसका जरा ख्याल करिये । जब कि लोग नावटी स्त्री पर भी इतने मुग्ध होते देखे जाते हैं, तब भया पर राजा इतना मुग्ध हो, इस मे क्या आश्चर्य की ात है ? वह तो साक्षात् स्त्री थी और बहुत रूप-सम्पन्न । आश्चर्य तो इस बात में है कि कहां तो आजकल के ोग जो बनावटी रूप मात्र देख कर मुग्ध बन जाते हैं ार कहा वह सुदर्शन, जो रूप-लावण्य-सम्पन्न अभया पटरानी र भी मुग्ध न हुआ ।

जब मैं अहमदनगर में था, तब वहां के लोग मेरे ामने आकर कहने लगे कि एक नाटक कम्पनी आई है जो ुत अच्छा नाटक करती है । देखने वालों पर अच्छा ाव पडता है । इस प्रकार उन लोगों ने मेरे सामने उस टक मंडली की बहुत प्रशंसा की । उस समय मैंने उन

सूर्य के समान ही भगवान् की वाणी सब के लाभ के लिए है। किसी की प्रकृति ही उल्टी हो और वह लाभ न ले सके तो दूसरी बात है। जिनके हृदय में अभिमान भरा हो वे लोग भगवान् की वाणी से लाभ नहीं उठा सकते। भगवान् की वाणी रूपी किरणें ऐसे लोगों के हृदय-प्रदेश में प्रकाश नहीं पहुंचा सकती।

भगवान् की वाणी का सहारा और लाभ किस प्रकार लिया जा सकता है, यह बात चरित्र कथन के द्वारा समझाता हूं, जिससे कि सब की समझ में आ जाय। चरित्र के जरिये प्रत्येक बात की समझ बहुत जल्दी पड़ती है। जो लोग तत्वज्ञान की बातें इस तरह नहीं समझ सकते, उनके लिए चरितानुवाद बहुत सहायक है। यदि कोई मनुष्य अपने हाथ में रंग लेकर कहे कि मेरे हाथ में हाथी है या घोड़ा, तो सामान्य मनुष्य को इसमें गतागम न पड़ेगी। किन्तु यदि वही मनुष्य रंग में पानी डाल कर उससे हाथी या घोड़े का चित्र बना कर पूछे कि यह क्या है तो बड़ी सरलता से कोई भी बता सकता है कि क्या है। जो चित्र बनाया गया है वह रंग का ही है। किन्तु साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति उस रंग के पीछे रही हुई कर्त्ता की शक्ति विशेष को नहीं पहचान सकता। उसे रंग में हाथी घोड़ा

करते और उसे सच्चा साधु क्यों नहीं मानते ? आप कहेंगे कि वह तो नकली साधु है उसे असली कैसे मानेंगे ? मैं कहता हूँ कि जैसे साधु नकली है, वैसे अन्य पात्र भी नकली ही हैं । जगल से वापिस लौट कर व्याख्यान में मैंने लोगों से ख़ूब कहा कि ऐसे लोगों के द्वारा दिखाए हुए खेल से आपका कुछ कल्याण नही होने वाला है ।

महारानी अभया बहुत सुन्दर थी और राजा दधिवाहन उस पर बहुत मुग्ध था । फिर भी सुदर्शन रानी पर मुग्ध न हुआ । उसके जाल में न फंसा । ऐसे ही महापुरुष की शरण लेकर भगवान् से प्रार्थना करो कि हे प्रभो ! ऐसे चारित्रशील व्यक्ति के चारित्र का अंश हमको भी प्राप्त हो !

तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किंवा ।

जो लक्ष्मीवान् की सेवा करता है क्या वह कभी भूखा रह सकता है ? जो भगवान् की शरण जाता है, वह भी उनके समान बन जाता है । वैसे ही शील धर्म का पालन करने वाले सुदर्शन की शरण ग्रहण करने से शील पालने की क्षमता अवश्य प्राप्त होगी ।

यह चरित्र मनरूपी कपड़े के मैल को साफ करने का काम भी करेगा । लोकनीति, शरीर-रक्षा और संसार व्यवहार की बातें भी इस चरित्र में आयेंगी । आज समाज में जो कुरीतियां घुसी हुई हैं, उनके विरूद्ध भी इस चारित्र में कुछ कहा जायगा । अतः इस चरित्र को सावधान होकर सुनिये और शील धर्म को अपना कर आत्म-कल्याण करिये ।

राजकोट

८—७—३६ का व्याख्यान

सकता है और बिगाड भी। अतः चरित्र-वर्णन में
त सावधानी रखने की आवश्यकता है ।

धर्म की गूढ बातें समझाने के लिए चरित्र-वर्णन
ता हूँ। इस चरित्र के नायक साधु नही किन्तु एक
स्थ हैं, जो अपनी पिछली अवस्था मे साधु बने हैं। गृह-
के चरित्र का वर्णन करके महापुरुषों ने यह बता दिया
क गृहस्थ भी कितने ऊंचे दर्जे तक धर्म का पालन करते
साधुओं को, ग्रहण किये हुए पंच महाव्रत किस प्रकार
न करने चाहिए यह इस से शिक्षा लेनी होगी। चरित्र
क का नाम सेठ सुदर्शन है। मेरी इच्छा इन्ही के गुणा-
द करने की है, अतः आज से प्रारंभ करता हूँ।

सिद्ध साधु को शीश नमा के, एक करूं अरदास।
सुदर्शन की कथा कहू मैं, पूरो हमारी आस ॥
धन सेठ सुदर्शन, शीयल शुद्ध पाली, तारी आतमा ॥

धर्म के चार अंग हैं-दान, शील, तप और भावना।
ं का वर्णन एक साथ नही किया जा सकता। अतः
द्वारा शील का कथन किया जाता है। शील के
२ गौण रूप से दान, तप और भाव का भी कथन
। किन्तु मुख्य कथा शील की है। जैसे नाटक दिखाने
यह कहते हैं कि आज राम का राज्यभिषेक दिखाया
ा। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि राज्या-
क के सिवाय अन्य दृश्य न दिखाये जायेंगे। राज्या-
क मुख्य रूप से बताया जाता है किन्तु गौण रूप से
दृश्य भी दिखाये जाते हैं। इस कथा के नायक ने
ः शील का पालन किया है अतः प्रत्येक कड़ी में उसे

इस प्रकार की प्रार्थना वही कर सकता है, जो पाप ो पाप मानता है, खुद को अपराधी मानकर स्वगुण-कीर्तन ो वांछा नही रखता तथा अपनी कमजोरियां सुनने के लिए त्सुक रहता है। जो अपने गुण सुनने के लिए लालायित रहता , वह अभी प्रभु प्रार्थना से दूर है ।

अब शास्त्र की बात कहता हूँ । कल कहा था कि स बीसवे अध्ययन में जो कुछ कहता है, वह सब पीठिका, स्तावना या भूमिका रूप से प्रथम गाथा में कह दिया गया । इस गाथा का सामान्य अर्थ कर दिया गया है । अब याकरण की दृष्टि से विशेष अर्थ तथा परमार्थ रूप अर्थ रना बाकी है । इस गाथा मे जो शब्द प्रयुक्त किए गये हैं, नसे किन-किन तत्वो का बोध होता है, यह टीकाकार तलाते हैं।

मैंने पहले यह वताया था कि नवकार मंत्र के पांच दों में दूसरा सिद्ध पद तो सिद्ध है और शेष चार पद साधक । एक दृष्टि से यह बात ठीक है किन्तु टीकाकार दूसरी ष्टि सामने रखकर अरिहन्त पद की गणना भी सिद्ध में रते हैं । इस दृष्टि से दो पद सिद्ध हैं और शेष तीन साधक । अरिहंत की गणना सिद्ध में की जाती है । उसके लिए ास्त्रीय प्रमाण भी है । कहा है—

एव सिद्धा वदन्ति परमाणु ।

अर्थात्—सिद्ध परमाणु की इस प्रकार व्याख्या करते । सिद्ध बोलते नही । उनके शरीर भी नही होता । वैसी ालत मे यह मानना पड़ेगा कि यहा जो सिद्ध शब्द का प्रयोग

धन्यवाद दिया गया है। कितनी कठिनाई के समय भी चरितनायक शील-धर्म से विचलित न हुए और अपना यह आदर्श चरित्र पीछे वालों के लिए छोड़ गये हैं।

शील का पालन करके अनन्त जीव अपना कल्याण साध चुके हैं। उन सबके चरित्र का वर्णन शक्य नहीं है। किसी एक के चरित्र का ही वर्णन किया जा सकता है। रंग से अनेक हाथी घोड़े चित्रित किये जा सकते हैं मगर जिस समय जितने की आवश्यकता होती है, उतने ही चित्रित किये जाते हैं। एक समय में एक का ही चरित्र कहा जा सकता है। अतः सुदर्शन का चरित्र कहा जाता है।

साधारणतया शील का अर्थ स्त्री—प्रसंग या अन्य तरीकों से वीर्यनाश न करना लिया जाता है। किन्तु यह अर्थ एकांगी है, शील का पूर्ण अर्थ नहीं है। शील की व्याख्या बहुत विस्तृत है। बुरे काम से निवृत्त होकर अच्छे काम में प्रवृत्त होने को शील कहते हैं। कार्य के प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दो अंग हैं। बिना प्रवृत्ति के निवृत्ति नहीं हो सकती और बिना निवृत्ति के प्रवृत्ति भी शक्य नहीं है। साधु के लिए समिति हो और गुप्ति न हो अथवा गुप्ति हो और समिति न हो तो काम [illegible] चल

पुरुषार्थ से होता है, फिर भी महान् पुरुषों की सहायता आवश्यकता रहती है। जैसे मनुष्य लिखता खुद है मगर या दीपक के प्रकाश के विना नही लिख सकता। लिखने प्रकाश की सहायता लेना अनिवार्य है। मनुष्य चलता है मगर प्रकाश की मदद जरूरी है। उसके बिना चलते ते खड्डे में गिर सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक काम- महापुरुषो के सहारे की जरूरत रहती है।

परमात्मा की प्रार्थना के विषय में भी यही बात है। हृदय मे परमात्मा का ध्यान हो तो दुर्वासना उस समय ही नही सकती। परमात्मा ध्यान और दुर्वासना का स्पर विरोध है। एक समय मे दोनों का निर्वाह नही हो ता। जब हृदय में दुर्वासना न रहे तब समझना चाहिए अब उसमें ईश्वर का निवास है। यदि जानबूझ कर य मे दुर्वासना रखे और ऊपर से परमात्मा का नाम लिया तो यह केवल ढोंग है, दिखावा है। सिद्ध और साधक ों की सहायता की अपेक्षा है, अतः दोनों को नमस्कार ा गया है।

नमस्कार रूप में जो प्रथम गाथा कही गई है, उसमें बात और समझनी है। गाथा में कहा है कि सिद्ध और ति को नमस्कार कर के तत्व की शिक्षा दूंगा। इस कथन ो क्रियाएं हैं। जब एक साथ दो क्रियाएं हों तब प्रथम ा त्वा प्रत्ययान्त होती है। इस क्रिया का प्रयोग अपूर्ण काम लिये होता है। जैसे कोई कहे कि मैं अमुक काम करके काम करूंगा। इसमें दो क्रियाएं हैं। एक अपूर्ण और ी पूर्ण। प्राकृत गाथा मे श्री आचार्य ने दो क्रियाएं रख

सकता है और बिगाड भी। अतः चरित्र-वर्णन में
हुत सावधानी रखने की आवश्यकता है ।

धर्म की गूढ बातें समझाने के लिए चरित्र-वर्णन
रता हूँ। इस चरित्र के नायक साधु नही किन्तु एक
हस्थ हैं, जो अपनी पिछली अवस्था में साधु बने हैं। गृह-
के चरित्र का वर्णन करके महापुरुषो ने यह बता दिया
कि गृहस्थ भी कितने ऊंचे दर्जे तक धर्म का पालन करते
। साधुओं को, ग्रहण किये हुए पंच महाव्रत किस प्रकार
लन करने चाहिए यह इस से शिक्षा लेनी होगी। चरित्र
यक का नाम सेठ सुदर्शन है। मेरी इच्छा इन्ही के गुणा-
गद करने की है, अतः आज से प्रारंभ करता हूँ।

सिद्ध साधु को शीश नमा के, एक करूं अरदास।
सुदर्शन की कथा कहू मैं, पूरो हमारी आस ॥
धन सेठ सुदर्शन, शीयल शुद्ध पाली, तारी आतमा ॥

धर्म के चार अंग हैं-दान, शील, तप और भावना।
रों का वर्णन एक साथ नही किया जा सकता। अतः
ा द्वारा शील का कथन किया जाता है। शील के
थ २ गौण रूप से दान, तप और भाव का भी कथन
गा। किन्तु मुख्य कथा शील की है। जैसे नाटक दिखाने
ले यह कहते हैं कि आज राम का राज्यभिषेक दिखाया
यगा। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि राज्या-
षेक के सिवाय अन्य दृश्य न दिखाये जायेंगे। राज्या-
षेक मुख्य रूप से बताया जाता है किन्तु गौण रूप से
य दृश्य भी दिखाये जाते हैं। इस कथा के नायक ने
यतः शील का पालन किया है अतः प्रत्येक कड़ी मे उसे

की निरन्वय नाश मानने की बात खंडित हो जाती है। टीकाकार कहते हैं कि यदि आत्मा निरन्वय-नाशी हो तो गाथा में दी गई दोनो कियाएं निरर्थक हो जायगी। सिद्ध और संयति को नमस्कार करके तत्व की शिक्षा देता हूं।' इस वाक्य मे 'नमस्कार करके' तथा 'शिक्षा देता हूँ' ये दो क्रियाएं हैं। प्रथम नमस्कार किया गया और बाद में शिक्षा देने का कार्य आरम्भ किया गया। दोनों क्रियाओ का कर्ता आत्मा एक ही है। यदि आत्मा का निरन्वय एकान्त नाश माना जाय तो दोनों क्रियाओ का प्रयोग व्यर्थ हो जायगा। आत्मा क्षण-क्षण विनष्ट होता है और वह भी सर्वथा नष्ट यदि होता है तथा उसकी पर्यायें ही नष्ट नही होती किन्तु वह खुद नष्ट हो जाता है तो वैसी हालत में नमस्कार करने वाला आत्मा नष्ट हो जाता है। फिर शिक्षा कौन देगा ? अथवा यह मानना पड़ेगा कि शिक्षा देने वाला आत्मा दूसरा है क्योंकि नमस्कार करने वाला आत्मा तो क्षणविनाशी होने के कारण उसी समय नष्ट हो गया और शिक्षा देने के लिए कायम न रहा। इस प्रकार आत्मा को निरन्वय विनाशी मानने से उपर्युक्त दोनों क्रियाएं व्यर्थ हो जाती हैं। किन्तु आत्मा बौद्धों की मान्यता मुताबिक एकान्त विनाशी नही है। आत्मा द्रव्य रूप से कायम रहता है। अतः दोनों क्रियाएं सार्थक हैं। दो क्रियाओं के प्रयोग मात्र से ही बौद्धो की क्षण-वादिता का खण्डन हो जाता है।

आत्मा का एकान्त विनाश मानने से अनेक हानियां हैं। इस सिद्धान्त पर कोई टिक भी नही सकता। उदाहरण के लिये किसी आदमी ने दूसरे आदमी पर दावा दायर किया कि मुझे इससे अमुक रकम लेनी है, वह दिलाई जाय।

धन्यवाद दिया गया है। कितनी कठिनाई के समय भी चरितनायक शील-धर्म से विचलित न हुए और अपना यह आदर्श चरित्र पीछे वालों के लिए छोड़ गये हैं।

शील का पालन करके अनन्त जीव अपना कल्याण साध चुके हैं। उन सबके चरित्र का वर्णन शक्य नही है। किसी एक के चरित्र का ही वर्णन किया जा सकता है। रंग से अनेक हाथी घोडे चित्रित किये जा सकते हैं मगर जिस समय जितने की आवश्यकता होती है, उतने ही चित्रित किये जाते हैं। एक समय मे एक का ही चरित्र कहा जा सकता है। अत: सुदर्शन का चरित्र कहा जाता है।

साधारणतया शील का अर्थ स्त्री—प्रसंग या अन्य तरीको से वीर्यनाश न करना लिया जाता है। किन्तु यह अर्थ एकांगी है, शील का पूर्ण अर्थ नही है। शील की व्याख्या बहुत विस्तृत है। बुरे काम से निवृत्त होकर अच्छे काम मे प्रवृत्त होने को शील कहते हैं। कार्य के प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दो अंग हैं। बिना प्रवृत्ति के निवृत्ति नहीं हो सकती और बिना निवृत्ति के प्रवृत्ति भी शक्य नही है। साधु के लिए समिति हो और गुप्ति न हो अथवा गुप्ति हो और समिति न हो तो काम नही चल सकता। समिति और प्ति दोनों की

बीसवें अध्ययन में कही हुई कथा महापुरुष की है। इस कथा के वक्ता महा निर्ग्रन्थ हैं और श्रोता महाराजा हैं। इन महापुरुषो की बाते हम जैसो के लिये कैसे लाभदायी होगी, इसका विचार करना चाहिए। इस कथा के श्रोता राजा श्रेणिक का परिचय करते हुए कहा है:—

पभूय रयणो राजा सेणिओ मगहाहिवो ।

मगधदेश का स्वामी राजा श्रेणिक बहुत रत्न वाला था। पहले रत्न का अर्थ समझ लीजिए। आप लोग हीरे, माणिक आदि को रत्न मानते हो लेकिन ये ही रत्न नहीं हैं, कुछ अन्य पदार्थ भी रत्न कहे जाते हैं। नरों में भी रत्न होते हैं, हाथी, घोडा आदि में भी रत्न होते हैं और स्त्रियों मे भी रत्न होते हैं। रत्न का अर्थ बहुत व्यापक है। रत्न का अर्थ श्रेष्ठ भी होता है। जो श्रेष्ठ होता है, उसेभो रत्न कहा जाता है। राजा श्रेणिक के यहा ऐसे अनेक रत्न थे।

यह बात विचार करने लायक है कि शास्त्रकार ने श्रेणिक राजा के लिए अन्य विशेषणों का प्रयोग न करके "बहुत रत्नों का स्वामी था" ऐसा क्यो कहा। प्रभूत रत्न कहने का आशय यह है कि यदि कोई अनेक रत्नो का स्वामी हो तो भी उसका जीवन बेकार है। किन्तु जिसने अपने आतमरत्न को पहचान लिया है, उसका जीवन सार्थक है। यदि आत्मा को न पहिचाना तो सब रत्न व्यर्थ हैं। अन्य सब रत्न तो सुलभ हैं किन्तु धर्म–रत्न दुर्लभ है। धर्म रूपी रत्न के मिलने पर ही अन्य रत्न लेखे मे गिने जा सकते हैं, अन्यथा वे व्यर्थ हैं।

आप लोगों को सब से बड़ी सम्पदा मनुष्य–जन्म के

न्तु लोककल्याण के लिए प्रवृत्त न हों तो आप उनको
ना क्यों करने लगेंगे ? महापुरुष यदि जगत् कल्याण के
र्यों में भाग न ले तो बड़ा गजब हो जाय । तब संसार
मालूम किस रसातल तक पहुंच जाय ?

शील का अर्थ बुरे काम छोड कर अच्छे काम करना
। पहले यह देखें कि बुरे काम क्या हैं ? हिंसा, झूठ,
री, व्यभिचार, आवश्यकता से अधिक भोगोपभोग, शराब
ादि का नशा तथा अन्य दुर्व्यसन ये बुरे काम हैं । बीड़ी,
म्बाखू, भंग आदि नशीली वस्तुओं का सेवन भी बुरे काम
गिना जाता है । इन सब कामों का त्याग करना संक्षेप
बुराई से निवृत्त होना कहा जाता है ।

दूसरे के साथ बुरा काम करना, अपनी आत्मा के
ाथ बुराई करना है । दूसरे को ठगना अपनी आत्मा को
गना है । अतः किसी की हिंसा न करना, किसी से झूठ
ात न कहना, किसी की बहन-बेटी पर बुरी निगाह न
रना किन्तु मां-बहिन समान समझना, नशे से तथा जुआ
ादि व्यसनों से बचना, बुरे कामों से बचना है । इन बुरे
ामों से बचकर दया, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि
ुण धारण करना तथा खान पान में वृद्धि न रखना
च्छे कामों में प्रवृत्त होना है । परस्त्री-त्यागी भी यदि
वस्त्री से ब्रह्मचर्य का खण्डन करता है तो वह अपूर्णशील
। जो स्व-पर दोनों का त्याग करता है, वह पूर्ण शील
ालने वाला है । शील की यह व्याख्या भी अधूरी है ।
ील की व्याख्या में पांचों महाव्रत भी आ जाते हैं ।

छोडिये और अपने हृदय में परमात्मा के नाम का गुंजन होने दीजिये। यह सोचिये कि मैं नाक कान हाथ पैर आदि नही हूँ। ये तो पुद्गल के रूप हैं। मैं शुद्ध चेतनमय आनंद-घन मूर्ति हूँ। इस तरह सोचने से आपको जो मनुष्य जन्म रूप रत्न मिला हुआ है, वह सार्थक होगा।

जब आप सोते हैं तब आंख, कान आदि सब बन्द रहते हैं, फिर भी स्वप्नावस्था में आत्मा देखता व सुनता है। स्वप्नावस्था मे इन्द्रियां सो जाती हैं और मन जागृत रहता है। इस अवस्था को ही स्वप्नावस्था कहते हैं। बाह्य इन्द्रियां सोई हुई हैं फिर भी स्वप्न में इंद्रियों का काम होता ही है। स्वप्न में मनुष्य नाटक सीनेमा देखता है और गाने भी सुनता है। इन्द्रियो के सोते रहते स्वप्नावस्था में इन्द्रियों का काम कौन करता है, इस बात का जरा ध्यानपूर्वक विचार कीजिये। इस बात का विवेक करिये कि आत्मा की शक्ति अनन्त है लेकिन भ्रमवश अथवा अज्ञान या मिथ्याधारना के कारण वह शरीरादि को अपना मान बैठा है। आत्मा का यह भ्रम वास्तविक पदार्थ के देख लेने से तुरन्त मिट सकता है। जैसे सीप को देखते ही चादी का भ्रम मिट जाता है। जड़ शरीर और चेतन आत्मा का यह बेमेल सम्बन्ध क्यों और कैसे है, इस बात पर विचार करिये। विचार करने से सद्ज्ञान प्राप्त होगा। विचार करके जो पदार्थ हमारे नही हैं उनको छोड़ने की कोशिश कीजिये। जब शरीर भी हमारा अपना नही हो सकता तो धन दौलत और कुटुम्बादि हमारे कब हो सकते हैं? अपने पराये का वास्तविक ज्ञान ही मोक्ष की कुंजी है। आत्मा मे अन्नत शक्तियां रही हुई हैं। यह बिना आंख के देखता और बिना कान के सुनता है, जीभ के बिना

सुदर्शन सेठ करोड़ों की सम्पत्ति वाला था। फिर भी वह किस प्रकार अपने शील व्रत पर दृढ रहा, यह यथा शक्ति और यथावसर बताने का प्रयत्न किया जायगा। इस कथा को सुनकर जो अशुभ से निवृत्त होंगे, और शुभ में प्रवृत्त होंगे वे अपनी आत्मा का कल्याण करेंगे तथा सब मनुष्य उनके दास बन कर उपस्थित रहेंगे।

राजकोट
६—७—३६ का
व्याख्यान

ा जाने से वह भयभीत हो गया। चोर का साहस ही
तना होता है ? मालिक के जाग जाने पर चोर की ठह-
की हिम्मत नही रहती। राजा को जागा हुआ देखकर
र ने सोचा कि यदि मैं पकडा जऊंगा तो मारा जाऊंगा।
ः वह चोर वहां से भागा। राजा ने भागते हुए चोर को
ा लिया। राजा ने सोचा—यदि मेरे महल मे से चोर बिना
ड़े भाग जायगा तो मेरी बदनामी होगी। अतः वह चोर
पीछे-पीछे दौड़ा। आगे चोर भागता जाता था और उसके
छे राजा भी दौड़ता जाता था। राजा को चोर के पीछे
ड़ता देखकर सिपाही आदि भी उसके पीछे दौडने लगे। आगे
गे चोर, उसके पीछे राजा और राजा के पीछे सिपाही। अन्त
चोर थक गया और विचारने लगा कि राजा उसके समीप
ही पहुंच रहा है, यदि मैं कपडा जाऊंगा तो जानकी खैरि-
ा नही है, मगर बचने की भी कोई गुंजाइश नही है।
गते हुए ही उसने आगे करने लायक बात तय करली।
स ही श्मशान आ गया था। उसने सोचा कि इस समय
के मुर्दा बन जाना चाहिए। मुर्दा बन जाने से राजा मेरा
ा बिगाड़ सकेगा ? मुर्दा बन जाने पर मुझे जिन्दा आदमी
कोई काम न करना चाहिये। मुझे पूरी तरह मुर्दा बन
ना चाहिए। स्वाग करना तो हूबहू करना चाहिए।

यह सोचकर वह धडाम से श्मशान में जाकर गिर
ा। उसने अपनी नाडियों का ऐसा संकोच कर लिया कि
नो साक्षात् मुर्दा ही हो। राजा उसके पास आ गया और
ड़ने लगा कि यह चोर पकड लिया गया है। इतने में
पाही लोग भी आ गये और कहने लगे कि महाराज, यह
म हमारा है। इस काम के लिये आपको कष्ट करने की

३ : महा निर्ग्रन्थ व्याख्या

चेतन भज तू अरहनाथ ने ते प्रभु त्रिभुवन राया।

यह अठारहवे तीर्थंकर भगवान् अरहनाथ की प्रार्थना है। मय कम है अतः इस प्रार्थना पर विशेष विचार न करके ास्त्रीय प्रार्थना पर विचार करता हूँ। कल से उत्तरा- यन का बीसवा अध्ययन शुरु किया है। इसका नाम महा नेग्रन्थ अध्ययन है। महान् और निग्रन्थ शब्दों के अर्थ सम- झने हैं। पूर्वाचार्यों ने महान् शब्द के अर्थ बताते हुए अनेक ाते समझाई हैं। उन सब का विवेचन करने जितना समय ही है। सूत्र समुद्र के समान अथाह हैं। उनका पार हम सेसे कैसे पा सकते हैं? फिर भी कुछ कहना तो चाहिए, तः कहता हूँ।

शास्त्रों में महान् आठ प्रकार के बताये गये हैं। १ ाम महान् २. स्थापना महान् ३. द्रव्य महान् ४. क्षेत्र महान् ५. काल महान् ६. प्रधान महान् ७. अपेक्षा महान् ८. भाव हान्। वीसवें अध्ययन में इन आठ प्रकार के महान् में से कस प्रकार का महान् कहा गया है, यह जानने के पूर्व इनका र्थ समझ लेना ठीक होगा।

मरा नहीं है। मुर्दे के शरीर से खून नहीं निकलता। सके खून का पानी हो जाता है। इसके शरीर से खून कल आया है, अतः यह जिन्दा है। इसे धीरे से उठालो र इसके कान में कह दो कि तेरे सब गुन्हा माफ हैं, उठ डा हो। यह सुनते ही चोर उठ खड़ा हुआ और राजा के मने आकर हाजिर हो गया।

राजा सोचने लगा कि यह चोर मेरे भय से मुर्दा वन ा था। मनुष्य के भय से भी मनुष्य इस प्रकार मुर्दा बन कता है तो मुझे मृत्यु के भय से क्या करना चाहिए? राजा चोर से पूछा कि तेरे पर इतनी मार पड़ने पर भी तू ो नहीं बोला? चोर ने उत्तर दिया कि महाराज! जब मुर्दे का स्वाँग किया था तब कैसे वोल सकता था? र्ा बना और मार पडने पर रोने लगूं, यह कैसे हो सकता राजा ने चोर से कहा कि मालूम होता है तुम बडे भक्त । चोर ने कहा–मैं भक्ति कुछ नहीं जानता, मैं तो आपके से अचेत पड़ा था। राजा ने पुनः कहा कि हे चोर! मेरे भय से तू मुर्दा अर्थात् शरीरादि के प्रति अनासक्त ा, वैसे ही यदि इस संसार के दुःखों के भय से बन जाय तेरा कल्याण हो जाय। चोर कहने लगा— मैं ज्ञान इन बातों को नहीं समझता।

दृष्टान्त कहने का सारांश यह है कि चोर ने मुर्दे का ग भरा था और उसे पूरा निभाया भी था। यदि वह र खाते वक्त बोल जाता तो क्या उसकी रक्षा हो सकती ? कभी नहीं। उसने मार खाकर भी अपने विरुद रक्षण ा था। चोर के समान आप भी यदि अपने विरुद की

१. नाम महान्- जिसमें महानता का कोई गुण नहीं है किन्तु केवल नाम से महान् हो वह नाम-महान् है। जैन शास्त्रों ने आरम्भ और अन्त समझाने का बहुत प्रयत्न किया है। वस्तु पहले नाम से ही जानी जाती है। मगर नाम जानकर ही न बैठ जाना चाहिए किन्तु उसका स्वरूप भी जानना समझना चाहिए।

२. स्थापना महान्- किसी भी वस्तु में महानता का आरोपण कर लेना स्थापना-महान् है।

३. द्रव्य महान्- द्रव्य-महान् का अर्थ समझाने के लिए यह द्रष्टान्त बताया गया है कि केवल ज्ञानी अन्त समय में जब केवली समुद्घात करते हैं तब उनके कर्म प्रदेश चौदह राजू प्रमाण समस्त लोकाकाश में छा जाते हैं। उस समय उनके शरीर से निकला हुआ कार्माण शरीर रूप महास्कन्ध चौदह राजू लोक में पूर जाता है। यह द्रव्य-महान् है।

४. क्षेत्र महान्- समस्त क्षेत्र में आकाश ही महान् है। आकाश लोक और अलोक दोनों में व्याप्त है।

५. काल महान्- काल में भविष्य काल महान् है। जिसका भविष्य सुधरा उसका सब कुछ सुधर गया। भूत-

ासार के झगड़े कुत्तों के समान हैं। यदि इस आत्मा रूपी
ाथी के पीछे झगडे-टण्टे रूप कुत्ते भूसते हों तो इससे आत्मा
ो क्या। कोई कोरे कागज पर स्याही से कुछ भी लिखता
ो तो वह लिखता रहे इससे आत्मा को क्या हानि है इस
कार सोचकर परमात्मा की शरण जाने से आपका सब
नोरथ सिद्ध होगा। चोर द्वारा स्वाग निभाने पर राजा
ा हृदय परिवर्तित हो गया तो कोई कारण नहीं है कि
ापके द्वारा ईश्वर भक्त का स्वांग पूरी तरह निभाने पर
ापके लिए लोगो का हृदय न बदले। आप लोग, पक्की
ीक्षा हो जाने के बाद भक्त के लिए सब कुछ करने के
ाए तैयार रहते हैं। भक्ति मे कपट नहीं होना चाहिए।
पट का पर्दा कभी न कभी फाश हुए बिना नही रहता।

आप लोग घरबार वाले हैं अतः व्याख्या सुनकर यहां
घर पहुंचते ही ससार की अनेक उपाधियां आपको आ
रेगी। उपाधियो के वक्त भी यदि आप लोग मेरा यह उप-
श ध्यान मे रक्खोगे तो आपका वास्तविक कल्याण होगा
ार यहा बैठ कर व्याख्यान श्रवण का कार्य सफल होगा।
ाख्यान हाल एक शिक्षालय है जहां अनेक विषयो की शिक्षा
जाती है। शिक्षालय से शिक्षा ग्रहण करके उसका उप-
ग जीवन व्यवहार मे किया जाता हैं। इसी प्रकार यहां
ग्रहण की हुई शिक्षाओं का पालन यदि जीवन में न किया
ा तो शिक्षा लेना व्यर्थ हो जायगा। जो पालन करेगा
ाका यह भाव और पर भव दोनों सुधरेगा।

अग्नि शीतल शील से रे, विषधर त्यागे विष।
शशक सिंह अज गज हो जावे, शीतल होवे विषरे ॥ धन.॥

से तीन प्रकार का है। द्विपद में तीर्थंकर महान् हैं। ष्पद मे सरभ अर्थात् अष्टापद पक्षी महान् है। अपद में डरीक–कमल महान् है। वृक्षादि अपद जीवो मे कमल ान् है। अचित्त महान् मे चिन्तामणि रत्न महान् है। मिश्र ान् में राज्य सम्पदा युक्त तीर्थंकर का शरीर महान् है। र्थंकर का शरीर तो दिव्य होता ही है किन्तु वे जो वस्त्रा-णादि धारण करते हैं वे भी महान् हैं। स्थापना के रण वस्तु का महत्व बढ जाता है। अतः मिश्र महान् में त्राभूषण-युक्त तीर्थंकर शरीर है।

७. पडुच्च अपेक्षा महान्– सरसों की अपेक्षा चना ान् है और चने की अपेक्षा बेर महान् है।

८. भाव महान्– टीकाकार कहते हैं कि प्रधानता से यिकभाव महान् है और आश्रय की अपेक्षा पारिणामिक व महान् है। पारिणामिक भाव के आश्रित जीव और ीव दोनो हैं। किसी आचार्य का यह भी मत है कि आश्रय दृष्टि से उदय भाव महान् है क्योंकि ससार के अनन्त व उदय भाव के ही आश्रित हैं। इस प्रकार जुदा जुदा हैं। किन्तु विचार करने से मालूम होता है कि आश्रय अपेक्षा पारिणामिक भाव महान् है। इस मे सिद्ध और ारी दोनों प्रकार के जीव आ जाते हैं। अतः प्रधानता क्षायिक भाव और आश्रय से पारिणामिक भाव महान् हैं।

यहां महा निर्ग्रन्थ कहा गया है सो द्रव्य क्षेत्र आदि दृष्टि से नही किन्तु भाव की दृष्टि से कहा गया है। महापुरुष पारिणामिक भाव से क्षायिक में वर्तते हैं

। जाती है कोई भाई एक-आध दिन शील का पालन करके ह जांच न करे कि देखू मेरे हाथ को अग्नि जलाती है । नही ? और यह सोच कर कोई घर जाकर चूल्हे की ग्नि मे अपना हाथ मत डाल देना । यदि कोई ऐसा करेगा । वह मूर्ख गिना जायगा । जिस शक्ति की बात कही जा ही है, माप भी उसी के अनुसार होना चाहिए । कहा जाता और सत्य भी है कि हवा मे भी वजन होता है । कोई ादमी एक लिफाफे में भर कर उसे तोलने लगे तो वह न लेगी । लिफाफे मे हवा न तुलने से कोई आदमी यह निष्कर्ष ाकाले कि हवा मे वजन होने की बात बिलकुल गलत है । यह उसकी भूल है । हवा तोली जा सकती है मगर उसे लने के साधन जुदा होते है । हवा बहुत सूक्ष्म है, अतः उसे लने के साधन भी सूक्ष्म होगे । किसी के ऐसा कह देने से ा हवा के विषय मे किसी प्रकार की शका की जा सकती है?

शील की शक्ति से अग्नि शीतल हो जाती है । मगर कब ार किस हद तक शील पालने से होती है इसका अध्ययन करना हिए । केवल शील की बाधा लेली और लगे करने परीक्षा हमारा हाथ अग्नि मे जलता है या नही तो पछताना गा । हाथ जला बैठोगे । शील की प्रशंसा करते हुए शास्त्र कहा है :—

देव दाणव गधव्वा जक्ख रक्खस किन्नरा ।
बभचारी नमंसन्ति दुक्करं जे करति तं ॥

देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर सब दुष्कर ाचर्य का पालन करने वाले को नमन करते हैं । इस प्रकर

उनको महान् कहा है।

अब निर्ग्रन्थ शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिये। ग्रन्थ शब्द का अर्थ होता है– गाठ। गाठें दो प्रकार की होती हैं। द्रव्य गाठ और भाव गाठ। जो द्रव्यऔ र भाव दोनो प्रकार के बन्धनों से रहित होता है उसे निर्ग्रन्थ कहते हैं। द्रव्य ग्रन्थी नौ प्रकार की हैं और भाव ग्रन्थी १४ (चौदह) प्रकार की हैं।

कोई व्यक्ति द्रव्य ग्रन्थी अर्थात् धन दौलत स्त्री पुत्र मकानादि छोड दे किन्तु भाव ग्रन्थी अर्थात् क्रोधमानादि विकार न छोडे तो वह निर्ग्रन्थ न कहा जायगा। निग्रन्थ होने के लिये निश्चय और व्यवहार दोनों प्रकार की ग्रन्थी छोडना आवश्यक है। यह बात ठीक है कि सिद्ध पन्द्रह प्रकार के होते हैं और उनमे गृहलिङ्ग सिद्ध भी होते हैं जो द्रव्य परिग्रह नहीं छोडते किन्तु वे भाव की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं। द्रव्य से तो स्वलिङ्गी ही सिद्ध होते हैं। जिन्होंने द्रव्य और भाव दोनों प्रकार के बन्धन या ग्रन्थी छोड दी है वे निर्ग्रन्थ हैं और जिन्होने सर्वथा प्रकार से ग्रन्थी परिग्रह का त्याग कर दिया है वे महा निग्रन्थ हैं। कोई द्रव्य ग्रन्थी को छोडता है तो कोई भाव ग्रन्थी को। अतः

ाहा क्या देखता है कि एक सांप उस बच्ची पर फन करके
ा से उसकी रक्षा कर रहा है ।

साँप भी तब काटता है, जब किसी में शैतानियत होती
। यदि शैतानियत न हो तो साँप भी नही काटता। सेंधिया
पूर्वज महादजी के लिए कहा जाता है कि वे पेशवा के
ा जूतों की रक्षा करने के लिये नौकर थे। एक बार
ावा किसो महफिल मे गये । महादजी उनके जूते छाती
रखकर सो गये । जब पेशवा वापस आये तब देखा कि
ादजी पर एक साँप छाया किए हुए है । उन्होंने सोचा
क्षात् काल रूप साँप भी जिसकी रक्षा कर रहा है, उस कि
दमी से मैं ऐसा तुच्छ काम ले रहा हूँ । ऐसा सोचकर
वा ने महादेजी को बढाना शुरू किया । आज महादजी
वशज करोडो की जागीरें भोग रहे हैं । उनके पैसे और
ाज आदि पर साँप का चित्र आज भी रहता है ।

कहने का भावार्थ यह है कि जब शील पूर्ण रूप से
ा जाय तब साँप भी नहीं काटता । लेकिन कोई इस
न पर साँप के मुह में हाथ न डाले अथवा साँप को
ड कर बच्चे पर छाया न करवाये । कोई ऐसा करे तो
उसकी भूल है । यदि हममे शील का तेज होगा तो
ति अपने आप हमारी सहायता करेगी ।

शील की शक्ति से सिंह भी खरगोश के समान गरीब बन
ा हैं । जो व्यक्ति सुदर्शन के समान किसी भी समय और
ी भी परिस्थिति मे अपने शील का भंग नही होने देता किन्तु
शील की रक्षा करता है, उसी का शील है सच्चा शील है।

अर्थात्- मैं अर्थ की शिक्षा देता हूं। गृहस्थ लोग अर्थ मतलब धन करते हैं किन्तु यहाँ धन कमाने की शिक्षा ा दी जाती किन्तु सब सुखों का मूल स्रोत रूप धर्म की क्षा दी जाती है। निर्ग्रन्थ धर्म की शिक्षा देता हूं।

आज कल के बहुत से लोग जो कोई उपदेशक आता उसी के बन बैठते है। किन्तु शास्त्र कहते है कि तुम ी व्यक्ति विशेष के अनुयायी नही हो। तुम निर्ग्रन्थ धर्म अनुयायी हो। जो निर्ग्रन्थ धर्म की बात कहे उसे मानो र जो इसके विपरीत कहे, उसे मत मानो। निर्ग्रन्थ धर्म प्रतिपादन निर्ग्रन्थ प्रवचन करते हैं। निर्ग्रन्थ प्रवचन शांगो मे विद्यमान हैं। जो शास्त्र या ग्रन्थ द्वादश अगों ही हुई वाणी का समर्थन करते हैं या पुष्टि करते है, वे न्थ प्रवचन ही है। किन्तु जो ग्रन्थ बारह अंगों की ी का खण्डन करते हों, उन में प्रतिपादित किसी भी ान्त के विरुद्ध प्ररूपणा करते हो, वे निर्ग्रन्थ प्रवचन हैं। जो निर्ग्रन्थ प्रवचन का अनुयायी होगा वह ऐसे ो ग्रन्थ या शास्त्र को न मानेगा जो द्वादशाग वाणी से र्थत न हो। मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन से मिलती हुई सभी बातें ता हूँ, चाहे वे किसी भी ग्रन्थ या शास्त्र मे कही गई निर्ग्रन्थ प्रवचन से विरुद्ध कोई बात मानने के लिए यार नही हूँ।

शास्त्र के आरम्भ में चार बातें होना जरूरी है। इन बातों को अनुबन्ध चतुष्टय कहा गया है। वे चार ये हैं। १. प्रवृत्ति २. प्रयोजन ३. सम्बन्ध ४. अधि- । किसी भी कार्य की प्रवृत्ति के विषय में पहले विचार

ताल मे केवल नौका ही बन सके, आत्मकल्याण न साध सके ।

इसी प्रकार यदि कोई घरबार छोड़ कर साधु बने और शील धर्म का पालन करे, फिर भी आत्म-कल्याण करने के बजाय चमत्कार दिखाने मे लग जाय तो उसका साधुत्व नष्ट हो जायगा । अतः सच्चे साधु शील रूपी जल में निमग्न रहते हैं । वे चमत्कार नही दिखाते । साधु तो घर-स्त्री आदि छोडकर शील का पालन करने के लिए ही कटिवद्ध हुए हैं अतः पालते ही है। मगर सुदर्शन ने गृहस्थावस्था में होते हुए भी शील का पालन किया है, अतः वे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं ।

शील किस प्रकार पाला जाता हैं, इसके शास्त्र में अनेक उदाहरण मौजूद हैं । आप उनको ध्यान में लीजिये। केवल यह मान बैठिये कि स्त्रीप्रसंग न करना ही शील है, वास्तव मे जब तक वीर्य की रक्षा न की जाय तब तक तेज नही आ सकता । अतः पर-स्त्री या घर-स्त्री सब से वच कर नष्ट होने वाले वीर्य की रक्षा कीजिये ।

एक आदमी की अंगूठी में रत्न जड़ा हुआ था । वह उसे निकाल कर पानी मे फेंकना चाहता था। दूसरा आदमी अपनी अंगूठी की रक्षा किया करता था । इन दोनों मे से आप किसे होशियार कहेगे ? रत्न की रक्षा करने वाले को ही होशियार कहेगे । जिस वीर्य से आपका यह शरीर बना हुआ है, उस वीर्य रूपी रत्न को इधर-उधर नष्ट करना कितनी मूर्खता है ? यदि आप उसकी रक्षा करेंगे तो आप में तेजस्विता आ जायगी । आज लोग वीर्यहीन होते जा रहे

किया जाता है। किसी नगर मे प्रवेश करने के पूर्व उसके द्वार का पता लगाया जाता है। यदि द्वार न हो तो नगर में नही जाया जा सकता। अनुबन्ध चतुष्टय मे कही गई चार बातो का विचार रखने से शास्त्र मे सुख से प्रवृत्ति हो सकती है। अनुबन्ध चतुष्टय से शास्त्र की परीक्षा भी हो जाती है। जैसे लाखो मन अनाज और हजारों गज कपडे की परीक्षा उनके नमूने से हो जाती है। शास्त्र में जो कुछ कहा जाने वाला हो उनकी बानगी प्रथम गाथा मे ही बतादी जाती है जिससे वाचको को मालूम हो जाता है कि अमुक ग्रन्थ में क्या विषय होगा।

पहले प्रवृत्ति होना चाहिए। अर्थात् यह शास्त्र वाचक को कहा ले जायगा, उसका कोई उद्देश्य होना चाहिए। किस मकसद को लेकर ग्रन्थ आरम्भ किया जाता है, यह पहले बताना चाहिए। आप जब घर से बाहर निकलते हैं तब कोई न कोई उद्देश्य जरूर नक्की कर लेते हैं कि अमुक स्थान पर जाना है। यह बात अलग है कि उद्देश्य भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। किन्तु यह निश्चित है कि हर प्रवृत्ति का कोई न कोई उद्देश्य जरूर होता है। दूध देही लेने के इरादे से निकला हुआ व्यक्ति दूध दही मिलने के स्थान की तरफ जायगा और साक भाजी के ।

ने पर भी मन न रुके तो क्या करना चाहिये ? थौर ने उत्तर
या कि साल में एक बार स्त्री-प्रसंग करना चाहिए। फिर
ष्य ने पूछा यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना ? गुरु
कहा कि मास में एक बार स्त्री से मिलना चाहिये। यदि इस
भी मन न रुके तो क्या करना चाहिये, पूछने पर थौर
उत्तर दिया कि फिर मर जाना चाहिये।

पवनजय की हनुमानजी एक मात्र सन्तान थे। अंजना
कोप करके पवनजी बारह वर्ष तक अगल रहे अलग रहकर
होने दूसरा विवाह नही किया था, किन्तु ब्रह्मचर्य का पालन
ते रहे। बारह वर्ष बाद अंजना से मिले थे, अतः हनुमान जैसे
पुत्र उत्पन्न हुआ था। आज लोगों को सशक्त और तेजस्वी
तो चाहिये, मगर यह विचार नही करते कि हम वीर्य
कितनी करते हैं ? डॉक्टर थौर ने कहा है कि मास में
बार स्त्री-प्रसंग करने पर भी यदि मन न रुकता हो
उस आदमी को मर ही जाना चाहिये क्योंकि जो आदमी
में एक बार से अधिक वीर्य-नाश करता है, उसके लिये
के सिवाय और क्या मार्ग है ?

आज समाज की क्या दशा है ? आठम चोदस को
शील पालने की शिक्षा देनी पड़ती है। आठम चौदस
प्रतिज्ञा लेकर लोग ऐसे भाव दिखलाते हैं, मानो हम
गों पर कोई उपकार करते हैं। सच्चा श्रावक स्वस्त्री

ोजन जानना जरूरी है। इस शास्त्र के पढ़ने से किस
ोजन की सिद्धि होगी, यह बात दूसरे नम्बर पर है।
ोजन के बाद अधिकारी का विचार किया जाता है। इस
स्त्र का अध्ययन मनन करने के लिए कौन व्यक्ति पात्र
और कौन अपात्र है। इसके बाद शास्त्र का सम्बन्ध बताना
हिए। किस प्रसंग से यह शास्त्र बना है, कौन वस्तु कहां
ली गई है, इस शास्त्र का कहने वाला कौन है और सुनने
ा कौन है आदि बताया जाना चाहिए।

इन चारो बातों से शास्त्र की परीक्षा भी हो जाती
यह पहले कह दिया गया है। इस महा निर्ग्रन्थ अध्ययन
ये चारों बातें हैं, यह बात इसके नाम से ही प्रकट है।
ो समय कम है अतः फिर कभी अवसर होने पर अपनी
द्र के अनुसार यह बताने की चेष्टा करूंगा कि किस
ार अनुबन्ध चतुष्टय का इस अध्ययन मे समावेश है।
अब इसी बात को व्यावहारिक ढग से कहा जाता है
ासे कि सामान्य समझ वाले व्यक्ति भी सरलता से समझ
। यह सबकी इच्छा रहती है कि महान् पुरुष की सेवा
जाय लेकिन महान् का अर्थ समझ लेना चाहिए। भाग-
में कहा है कि—

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितासगिसंगम् ।
महीन्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥

अर्थात् मुक्ति का द्वार महान् पुरुषों की सेवा करना है
नरक-द्वार कामिनो की संगति करने वाले की सोहबत
ा है। महान् वे हैं जो समचित्त हैं, प्रशान्त हैं, क्रोध

९ : स्वतन्त्रता

सुज्ञानी जीवा भजले रे जिन इकवीसमां । प्रा०..."

यह इकवीसवे तीर्थंकर भगवान् नेमीनाथ की प्रार्थना
। परमात्मा की कैसी प्रार्थना करनी ,चाहिए, इस विषय
बहुत विचार किया जा सकता है किन्तु इस समय थोड़ा
प्रकाश डालता हूँ । इस प्रार्थना में कहा गया है कि—

तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो ।

यह एक महावाक्य है । इसी प्रकार दूसरों ने भी
[illegible]ा है—

देवो भूत्वा देवं यजेत्

इन पदों का भावार्थ यह है कि प्रभु की प्रार्थना गुलाम
कर मत करो किन्तु परमात्म-स्वरूप बनकर करो ।

यदि कोई यह कहे कि जब हम खुद परमात्म-स्व-
हैं तब प्रार्थना करने की क्या आवश्यकता रह जाती
? प्रार्थना तो इसलिए की जाती है कि हम अपूर्ण हैं और
मात्मा सम्पूर्ण है । हम आत्मा हैं, वह परम आत्मा है ।

रहित हैं, सब के मित्र और साधु-चरित हैं।

महान् पुरुष की सेवा को मोक्ष का द्वार बताया गया है और कनक कामिनी मे फंसे हुओ की सेवा को नरक का द्वार। इस पर से हमारी उत्सुकता बढ जाती है कि महान् पुरुष कौन है जिसकी उपासना करने से हमारे बन्धन टूट जाते हैं। जो बड़ी-बड़ी जागीरें भोगते हैं, अच्छे गहने और कपडे पहनते हैं, आलीशान बंगलों में निवास करते हैं, उन्हें महान् समझें अथवा किन्ही दूसरों को ?

जैन शास्त्रानुसार इसका खुलसा किया ही जायगा किंतु पहले भागवत पुराण के अनुसार महापुरुष की व्याख्या समझ लें। भागवत पुराण कहता है कि इस प्रकार की उपाधि वालो को महान् नही मानना चाहिए। महान् उसे समझना चाहिए जो समचित्त हों। महान् पुरुष का चित्त सम होना चाहिए। शत्रु और मित्र पर समभाव होना चाहिए। जिसका मन आत्मा मे हो, पुद्गल मे न हो, वह समचित्त है और वही महान् भी है।

समचित्त का अर्थ जो वस्तु जैसी है, उसे वैसा ही मानना भी है। आत्मा चैतन्य स्वरूप है और जड पदार्थ पुद्गल रूप है। इन दोनों को जुदा मानना तथा इनके धर्म भी • जुदा मानना

रखने से गुलामवृत्ति छूट जाती है।

राष्ट्रीय और आर्थिक स्वतन्त्रता भी स्वतन्त्र भावना रखने से ही प्राप्त हो सकती है। सच्चा यकीन रखे बिना राष्ट्रीय स्वतन्त्रता भी दुर्लभ है। जब तक गुलामी की भावना हृदय में से नही निकल जाती तब तक स्वतन्त्रता की बातें व्यर्थ हैं। सब लोग स्वतन्त्रता चाहते हैं और उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न भी करते हैं किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं। सबका लक्ष्य भी एक मात्र स्वतन्त्रता-प्राप्ति है किन्तु रास्ते जुदे-जुदे बताये जाते हैं। कोई कहता है-स्त्रियों को सुशिक्षित बनाये बिना भारत आजाद नही हो सकता। कोई कहता है, बिना सात करोड़ अछूत कहे जाने वाले लोगों का उद्धार किये आजादी दुर्लभ है। कोई कहता है, बिना ग्रामों और ग्रामोद्योग की उन्नति के स्वतन्त्रता की बातें बेकार हैं। कोई खादी को स्वतन्त्रता की चाबी बताता है। मतलब यह कि लक्ष्य एक होने पर भी मार्ग जुदा-जुदा बताये जाते हैं।

यद्यपि ये सब मार्ग स्वतन्त्रता की प्राप्ति में उपयोगी हैं, किसी न किसी रूप से सब मार्ग काम के हैं। किन्तु आत्मा की गुलामी छुटे बिना सम्पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। जब तक आत्मा में गुलामी के भाव भरे हुए रहेंगे तब तक ये जुदे-जुदे उपाय भी बेकार होंगे। ये सब उपाय अपूर्ण हैं। पूर्ण उपाय तो गुलामवृत्ति का त्याग ही है। आत्मिक स्वतन्त्रता के बिना राजनैतिक स्वतन्त्रता भी इतनी उपयोगी न होगी। जब तक मनुष्य विकारों का गुलाम बना रहेगा, तब तक वास्तविक शान्ति प्राप्त कर ही नहीं सकता।

स्वस्तु को भी अपनी कहता है लेकिन उपाधि को उपाधि
ानना, यह भी समचित्त का लक्षण है ।

यदि कोई व्यक्ति रत्न को ककर कहे और कंकर को
न कहे तो वह मूर्ख गिना जाता है । जब कि रत्न और
कर दोनो ही जड वस्तु हैं । कोई व्यक्ति जगल मे जा रहा
। भ्रमवश उसने सीप को चादी मान लिया और चादी
सीप । उसके मान लेने से सीप चादी नही हो गई और
चादी ही सीप हो गई । किसी के उल्टा मान लेने से
नु अन्यथा नही हो जाती । किन्तु ऐसा मानने या कहने
ला जगत् में मूर्ख गिना जाता है । इसी प्रकार जड को
न्य और चैतन्य को जड कहने मानने वाले भी अज्ञानी
ाझे जाते हैं । इसी अज्ञान के कारण जीव मेरा-तेरा कहा
रता है । जो इस प्रकार की उपाधि मे फसे हैं, वे महान्
ी हैं । वे जड़ पदार्थ के गुलाम हैं । वे आत्मानन्दी नही
हे जा सकते । महान् वे हैं, जो खुद के शरीर को भी अपना
ी मानते । अन्य वस्तुओ के लिए तो कहना ही क्या ?
ावहारिक भाषा से ज्ञानी जन भी मेरा शरीर, मेरा कान,
क आदि कहेगे मगर निश्चय मे वे जानते हैं कि ये सब
ारे नही हैं । कहने का साराश यह है कि समचित्त वाले
ाधि को उपाधि मानते हैं ।

अब इस बात पर भी विचार करे कि महान् की सेवा
सलिए करें ? कोई यह ख्याल करके महापुरुष की सेवा
: कि वे उसके कान मे मन्त्र फूंक देंगे या सिर पर हाथ
देंगे तो वह ऋद्धिशाली हो जायगा, महान् पुरुष का
मान करना है । यह महान् पुरुष की सेवा नही गिनी

से प्रसन्न होकर हमे सुखी बना देगा, किन्तु ईश्वरत्व तो नहीं दे देगा। बादशाह और नौकर के दृष्टान्त से आत्मा और परमात्मा मे जो साम्य बताया गया है, वह आध्यत्मिक मार्ग मे लागू नही हो सकता। बादशाह और नौकर का दृष्टांत स्थूल भौतिक है। जब कि आत्मा और परमात्मा का संबंध सूक्ष्म है, आध्यात्मिक है। इस प्रकार की कल्पना आध्यात्मिक मार्ग मे कोई मूल्य नही रखती।

अनलहक या खुदा शब्द का अभिप्राय यह है कि मैं ईश्वर हूँ। खुदा का अर्थ है जो खुद से बना हो। तो क्या आत्मा किसी का बनाया हुआ है? क्या आत्मा बनावटी है? जैसे कुम्भकार मिट्टी से घडा बनाता है, उसी प्रकार हमको भी किसी ने बनाया है? जब कोई हमें बना सकता है तो कोई हमारा विनाश भी कर सकता है। जैसे कि कुभकार घडा बना भी सकता है और फोड़ भी सकता है। ऊपर के सब प्रश्न निरर्थक हैं। वास्तव मे आत्मा वैसा नही है। यदि आत्मा बनावटी हो तो मुक्ति या स्वतन्त्रता के लिये किये हुए हमारे प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध होंगे। हम क्या हैं? और कैसे हैं? सो इस प्रार्थना मे बताया ही है:—

> तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो।
> शुद्ध चैतन्य आनन्द विनयचन्द परमारथ पद भेंटो ॥ सुज्ञानी ॥

कायरता और दुविधा के कपड़े फेंककर आत्म-स्वरूप को पहिचानिये। आपका आत्मा ईश्वर के आत्मा से छोटा नही है। आप तो इतना विकास कर चुके हो, आपकी आत्मा ईश्वर के बराबर है, इस में क्या सन्देह है? खस-खस जितने शरीर मे निगोद के अनन्त जीव रहे हुए हैं,

जायगी किन्तु माया की सेवा गिनी जायगी। जो इस भावना से महान् पुरुष की सेवा करता है कि मैं अनन्त काल से संसार की माया जाल में फंसा हुआ हूं, अज्ञान के कारण दुःख सहन कर रहा हूं, जड़ को अपना मान बैठा हूं, इन सबसे महापुरुष की सेवा करके छुटकारा पाऊं, उसकी सेवा सफल है। ऐसी सेवा ही मुक्ति का द्वार है।

समचित्त वालों को कोई लाखो गालियां दे तो भी उनके मन में किंचित् विकार नही आता। कहते हैं कि एक बार पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज रतलाम शहर में सेठजी के बाजार में और शायद उन्ही के मकान मे विराजते थे। उस समय रतलाम बहुत उन्नत शहर माना जाता था और सेठ भोजाजी भगवान् की खूब चलती थी। पूज्य श्री की प्रशंसा सुनकर एक मुसलमान भाई के मन में उनकी परीक्षा लेने की भावना पैदा हुई। अवसर देखकर वह एक दिन उनके ठहरने के मकान पर उपस्थित हुआ। उस समय पूज्य श्री स्वाध्याय तथा अन्य धर्मक्रियाएं कर रहे थे। उस मुसलमान ने जैसी उसके मन में आई वैसी अनेक गालियां दीं। उसकी गालियां ऐसी थी कि सुनने वाले को गुस्सा आये बिना न रहे। किन्तु पूज्य श्री समचित्त थे। वे गालियां सुनकर भी विकृत न हुए। हसते ही रहे। उनके चेहरे पर किसी प्रकार की तब्दीली के चिह्न नजर न आये। आखिर

किया जा सकता है। जिन लोगों ने सोने की खानें देखी हैं, वे इस बात को अच्छी तरह समझ सकते हैं।

जिस प्रकार शुद्ध और अशुद्ध सोने में अन्तर है और वह अंतर व्यवहार की दृष्टि से है, उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा में जो भेद है, वह व्यवहारनय से है। शुद्ध संग्रह नय की दृष्टि से उनमें कोई भेद नही है। जैसे मिट्टी में मिला हुआ सोना भी सोना ही है, वैसे ही कर्ममल से आवृत्त आत्मा भी ईश्वर ही है। जिस प्रकार सुवर्ण निकाले जाने वाले मिट्टी के डले को देखकर स्थूल समझवाला व्यक्ति उस मे सोना नही देख सकता है किन्तु इस विषय का विशेषज्ञ व्यक्ति उस डले मे स्पष्ट रूप से सोना देखता है। उसी प्रकार माया के पर्दे मे फंसे हुए और संसार के व्यवहारों में मशगूल व्यक्ति के आत्मा मे भी ज्ञानी-जन परमात्मपन देख रहे हैं। मतलब यह कि आत्मा और परमात्मा की एक ही जाति है। भेद तो औपाधिक है। वास्तविक भेद कुछ नहीं है अतः विद्वानो ने अनुभव करके 'अनल हक' या 'एगे आया' कहा है।

आज के जमाने मे 'हमारा आत्मा ईश्वर है' यह मान कर चलने में बड़ी कठिनाई हो रही है। यह कठिनाई मान्यता की ही कठिनाई है। वास्तव मे आत्मा से परमात्मा बनना बड़ा सरल काम है। यदि महात्मा लोगों की सत्संगति रूप सहायता प्राप्त हो जाय तो अपने को ईश्वर मानकर आगे बढने मे कोई कठिनाई नही है। दीपक से दीपक जलता है। यह बात एक उदाहरण कहकर समझाना चाहता हूँ।

एक साहूकार का लड़का बुरी संगत में फंस गया।

आये तब प्रशांत रहना बड़ा कठिन है। महान् वह है जो सहन करने के अवसर पर सहनशीलता दिखाता है। कोई पूछ सकता कि क्या दूसरों की गालियां सुनते रहना और उनकी उदण्डता मे सहायता करना सहन शीलता है? हां, महान् पुरुष वह है जो गालियाँ सुनते वक्त भी शान्तचित्त रहता है। महान् उन गालियों को अपने लिए नही मानते। वे उनमे से भी अपने अनुकूल सार वात ग्रहण कर लेते हैं। जब उनसे कोई यह कहे कि "ओ दुष्ट यह क्या करते हो" तब वे अपने सम्बोधन में कहे हुए दुष्ट विशेषण से भी कुछ न कुछ नसीहत ग्रहण करते है। महान् पुरुष अपने लिये दुष्ट शब्द का प्रयोग सुनकर यह विचार करते हैं कि जिन कार्यों के करने से, मनुष्य दुष्ट बनता है, वे कार्य मुझ में तो नही पाये जाते? यदि दुष्टता कि कोई बात उनमें पाई जाती हो तो वे आत्मनिरीक्षण करके उसे बाहर निकाल फेंकते है और दुष्ट कहने वाले का उपकार मानते हैं, किन्तु यदि उन्हे आत्मनिरीक्षण के बाद यह ज्ञात हो कि उनमें दुष्ट बनाने की कोई सामग्री नही है तो वे ख्याल करके दुष्ट कहने वाले को माफ कर देते हैं कि यह किसी अन्य के लिए कहता होगा अथवा भूल या अज्ञान से कह रहा होगा। अज्ञानी और भूल करने वाले सदा क्षमा करने योग्य होते हैं। मेरे समान वेषभूषा वाले किसी अन्य व्यक्ति को दुष्टता करते देखकर इसने मेरे लिए भी दुष्ट शब्द का व्यवहार किया है-किन्तु इस में इसकी भूल है। यह सोचकर महान् अपनी महत्ता का परिचय देते हैं।

मान लीजिये आपने सफेद साफा बांध रखा है। किसी ने आपको बुलाने के लिए पुकारा कि ओ काले साफे वाले

मे ही मांगने लगा ।

दैवयोग से भीख मांगते-मांगते एक दिन वह अपने पिता के जमाने के हितैषी मुनीम के घर जा निकला और खाने के लिये रोटी मांगने लगा। लड़का मुनीम को न पहिचानता था मगर मुनीम ने लड़के को पहिचान लिया मुनीम ने मन मे विचार किया कि यह मेरे महान् उपकारी सेठ का लड़का है मगर आज इसकी क्या दशा है । सेठ का मुझ पर मेरे पिता के समान उपकार है । मुनीम यह सोच रहा था मगर वह लडका 'भूख लगी है, कुछ भोजन हो तो देओ' की रट लगा रहा था । मुनीम यदि चाहता तो दो रोटी देकर उसे रवाना कर देता मगर उसके मन मे कुछ दूसरी भावना थी । किसी भिखारी को दो पैसे देकर उससे पिण्ड छुडाना दूसरी बात है और उसका सुधार करना या हमेशा के लिए उसका भिखारीपन मिटा देना अन्य बात है । हमारे देश में उदारता तो बहुत है मगर सामने वाले को गुलाम बने रहने देकर देने की उदारता है। गुलामी से छुड़ाकर देने की उदारता बहुत कम है ।

मुनीम ने लडके से कहा कि यहां मेरे पास आओ । लड़का सोचने लगा कि मैं इस लिवास मे ऐसे भव्य भवन मे कैसे जाऊं ? वही खडा-खडा कहने लगा कि जो कुछ देना हो वह यही पर दे दो । मुनीम के बहुत आग्रह से वह उसके पास चला गया । मुनीम ने पूछा कि क्या तुम मुझे पहिचानते हो ? लडके ने कहा, आप जैसे उदार और बडे आदमी को कौन नही जानता ? मुनीम ने कहा, इन बढावा देने वाली बातो को जाने दो। मैं तेरा नौकर हूं । तेरी

इधर आओ । क्या आप यह बात सुनकर नाराज होंगे ? नहीं । आप यही विचार करेंगे कि मेरे सिर पर सफेद साफा है और यह काले साफे वाले को बुला रहा है, सो किसी अन्य को बुलाता होगा अथवा यह भी ख्याल कर सकते हैं कि भूल से सफेद शब्द के बजाय काला शब्द इसके मुख से निकल गया है । ऐसा विचार करने पर न क्रोध आयेगा और न नाराज होने का प्रसग ही । इसके विपरीत यदि आपने यह ख्याल कर लिया कि यह मनुष्य मुझे काले साफे वाला कैसे कहता है, इसकी भूल का मजा इसे चखाना चाहिए तो मानना होगा कि आपको अपने सिर पर बान्धे हुए सफेद साफे पर विश्वास ही नही है ।

यदि लोग इस सिद्धान्त को अपना लें तो संसार में झगड़े टंटे ही न रहें । सर्वत्र शांति छा जाय । पिता–पुत्र या सास बहू में झगड़े इसी कारण होते हैं कि एक समझता है 'मैं ऐसा नहीं हूं फिर भी मुझे ऐसा कैसे कह दिया' ? इसके बजाय यदि यह समझने लगे कि जब मैं ऐसा हूं ही नहीं, तब इसका ऐसा कहना व्यर्थ है । तब अशांति या झगड़े का कोई कारण खड़ा ही नही हो सकता । आप लोग निर्ग्रंथ मुनियों की सेवा करने वाले हो, अतः सहनशीलता का यह अपनाओ और समचित्त बन कर आत्मा का कल्याण

तैयार हूँ जिससे कि तुम पहिले के समान धनवान् बन जाओ। लडके ने सब बात स्वीकार करली । उसको स्नानादि करा कर अपने साथ भोजन करने के लिए बिठा लिया । उस मुनीम ने यह सोचकर कि यह भिखमंगा रह चुका है, अतः इसके साथ न बैठना चाहिए, घृणा नही की । उसने यह सोचा कि अज्ञानवश होकर इससे जो भूले हुई हैं, वे अब यह छोड़ रहा है और भविष्य में सुधार करने का नियम लेता है । अतः घृणा करना ठीक नही है किन्तु इसका सुधार करना चाहिये । घृणा करने की अपेक्षा यदि सुधार करने की बात अपना ली जाय तो मनुष्य-जाति का उद्धार हो जाय ।

लोग पुण्य और पाप का अर्थ करते हुए कहते हैं कि जो पुण्य लाया है वह पुण्य भोगता है और जो पाप लाया है वह पाप । लेकिन यदि सब लोग ऐसा कहने लग जाय तो क्या दशा हो ? इसका ख्याल करिये । डॉक्टर बीमार से कह दे कि तू अपने पापों का फल भोग रहा है, मैं कुछ इलाज न करूंगा तो क्या आप यह बात पसन्द करेंगे ? पापी को पाप का उदय हुआ है मगर आपको किसका उदय है ?

दया धर्म पावे तो कोई पुण्यवान पावे, ज्यारे दया की बात सुहावे जी।
भारी करमा अनन्त ससारी, ज्यारे दया दाय नही आवे जी ॥

लोग यह मानते हैं कि जिसके पास गाडी, घोड़ी, लाडी तथा बाड़ी आदि साधन हों, जिसे अच्छा खानपान, कपड़ा, गहना, मिलता हो, तथा जिसके यहाँ नौकर-चाकर हो, वह पुण्यवान् है । इसके विपरीत जिसके पास खाना-पीना और कपडे आदि न हो, वह पापी है । पापी और पुण्यवान् की ऐसी व्याख्या अज्ञानी लोग करते हैं । ज्ञानीजन ऐसी व्याख्या नही करते । वे किसी के पास कपड़े गहने आदि होने से उसे

कृत्य किया है उसी का फल अब मिल रहा है। यह माना जाय कि दूसरा व्यक्ति हमारा शुभ या अशुभ कर रहा है तो खुद का किया हुआ कृत्य व्यर्थ हो जायगा।

कहने का साराश यह है जो प्रसंग पर क्रोधादि विकारों का काबू मे रख सके और सामने वाले को अपने प्रेम पूर्ण बर्ताव से जीत सके, वही महान् है और वही समचित्त भी है। ऐसे पुरुष जड़ पदार्थों के वश में नही होते। वे यह सोचते हैं कि—

जीव नावि पुग्गली नैव पुग्गल कदा पुग्गलाधार नही तास रंगी।
परतणो ईश नही अपर ए एश्वर्यता वस्तु धर्मे कदा न परसगी॥

श्री देवचन्द्र चौवीसी

जिस व्यक्ति की परमात्मा के साथ लौ लगी होगी, वह यह सोचेगा कि मैं पुद्गल नही हूँ और पुद्गल भी मेरे नहीं है। मैं पुद्गलो का मालिक बन कर भी नही रहना चाहता तो उनका गुलाम होने की बात ही क्या है ?

आज लोगों को जो दु.ख है वह पुद्गलों का ही है। पुद्गलो के गुलाम बन रहे हैं। यदि धैर्य रखा जाय तो पुद्गल उनके गुलाम बन सकते हैं। किन्तु लोग धैर्य छोड़ कर पुद्गल के पीछे पडे हुए हैं, इसी से दु ख बढ रहा है। यह दुःख दूसरों का लाया हुआ नही है किन्तु अपने खुद के अज्ञान के कारण से ही है।

श्री समयसार नाटक मे कहा है कि—

कहे एक सखी सयानी, सुन री सुबुद्धि रानी, तेरो पति दुखी—
लग्यो और यार है

हुआ चला गया । लड़का वहीं बेहोश अवस्था में पड़ा रहा। इकट्ठी भीड में एक गरीब आदमी भी था। वह बहुत गरीब था । वह तुरन्त उस बच्चे को उठाकर अस्पताल मे ले गया और डॉक्टर से कहा कि न मालूम यह लडका किसका है? इसे मोटर एक्सीडेन्ट से चोट आई है। यह बडा दुःखी है। आप इस केश को जल्दी ही सुधारने की मेहरबानी करिये।

लडके के घायल हो जाने की बात आपने भी सुनी। साथ में यह भी सुन लिया कि मोटर मालिक श्रीमान् अनेक उपाधि-धारी मुकद्दमा चलाने की धमकी देकर भाग निकले और एक गरीब आदमी बच्चे को उठाकर अस्पताल ले गया है। आप अस्पताल पहुचे। बच्चे को यहां तक पहुंचाने वाले गरीब को भी देख लिया। आप जरा हृदय पर हाथ रख कर कहिये कि आप किसे पुण्यवान और पापी समझते हैं? बेहोश नादान बच्चे को छोडकर चले जाने वाले को या उसकी दया करके अस्पताल पहुचाने वाले को पुण्यवान् कहेगे? यद्यपि चालू व्याख्या के अनुसार वह सेठ बडा धनवान् और साधन-सम्पन्न था और वह गरीब जो कि बच्चे को अस्पताल ले गया कतई गरीब और साधन-हीन था, हमारा दिल यही कहता है कि वह धनवान् सेठ पापी था और वह गरीब आदमी पुण्यवान् था। आत्मा जिस बात की साक्षी दे, वह बात ठीक होती है। सेठ और गरीब मे क्या अन्तर है, जिससे एक को पापी और दूसरे को पुण्यात्मा कहेगे। अन्तर है हार्दिक दया भाव का। एक अपने धन के मद मे तडफते बच्चे को छोड़ कर चला गया और दूसरा "आत्मवत् सर्व भूतेषु" के अनुसार बच्चे की वेदना सहन न कर सका और सेवा करने लगा। एक

महा अपराधी छहों माहीं एक नर सोई दुख देत लाल दीसे नाना पार है।
कहे माली सुमति कहा दोष पुद्गल को आपनी हो भूल लाल—होता आपा बार है।
खोटो नाणो आपको सराफ कहा लागे बीर काहुको न दोष मेरो भोदू भरतार है।

इस प्रकार सब दोष या मूर्खता हमारी आत्मा की ही है। पुद्गलों का क्या दोष है? अत. पुद्गलो पर से ममता छोड़ो। हाय हाय करने से कुछ लाभ न होगा।

अब सुदर्शन की कथा कही जाती है। मुझे सुदर्शन से किसी प्रकार का लेन-देन नहीं है। पुद्गल को छोडने वाले सब महात्माओं को मेरा नमस्कार है। सुदर्शन ने भी पुद्गलों पर से ममता हटाई है अत: उसका गुणानुवाद किया जाता है और धन्य-धन्य कहा जाता है। पुदगल माया को छोड़कर जो महात्मा आगे बढे हैं उनको नमस्कार करने से हमारा आत्मा निर्मल बनता है और आगे बढ़ता है।

चम्पापुरी नगरी अति सुन्दर, दधिवाहन तिहां राय।
पटरानी अभया अति सुन्दर रूप कला शोभाय ॥ रे धन०

कोटि महा अघ पातक लागा, शरण गये प्रभु ताहु न त्यागा ।

ज्ञानीजन शरण में आये हुए के पापों पर ख्याल नहीं करते क्यों कि वे जानते हैं कि जब वह शरण में आ गया है तो पाप भावना को भी छोड चुका होगा । वे तो उसकी स्थिति सुधारने का प्रयत्न करते हैं । ज्ञानीजन कीड़े-मकोड़े आदि पर भी दया करते हैं, तब मनुष्य पर क्यों न करेंगे ?

चातुर्मास की चौदस को दया के सम्बन्ध में मुझे व्याख्यान मे कुछ कहना था किन्तु अन्य बातों मे यह बात कहने से रह गई थी । सक्षेप में आज कहता हूँ । आप लोग विचार करते होगे कि हमने चौमासे की विनती की है इसलिए महाराज ने चातुर्मास किया है । किन्तु यदि चातुर्मास में एक स्थान पर ठहरने का हमारा नियम न होता तो क्या आपकी विनती होने पर भी हम यहां ठहर सकते थे ? हमारा नियम है अतः ठहरे हैं । नही तो लाख विनती होने पर भी नही रह सकते । चौमासे मे वर्षा के कारण बहुत जीव उत्पन्न हो जाते हैं । उनकी रक्षा करने के लिए चार मास हम लोग एक स्थान पर ठहरते हैं । अब हमारा आप से यह कहना है कि जिन जीवों की रक्षा करने के निमित्त हम यहा ठहरे हैं, उनकी आप भी दया करो । चौमासे में जीवोत्पत्ति बहुत हो जाती है अतः उनकी रक्षा सावधानी-पूर्वक करिये, जिससे आपके स्वास्थ्य और धर्म दोनों की रक्षा हो सके ।

एक आदमी सडा आटा, सड़ी दाल आदि चीजें खाता है, जिनमें कीड़े पड चुके हैं । दूसरा आदमी ऐसी चीजें नही

बाद धर्म को दिया गया है। हम लोग सुदर्शन को धन्य-
देते हैं। किन्तु कोरा धन्यवाद देकर ही न रह जांय।
भी इनके पद चिह्नों पर चले तभी धन्यवाद देना सार्थक
उनके गुणों का अनुसरण न किया तो हमारा बड़ा
य होगा। कल्पना करिये कि एक आदमी भूखा है।
भूख से कराह रहा था। वह सेठ के घर गया। उस
सेठ स्वर्णथाल में परोसे हुए विविध व्यंजनों का भोग
रहे थे। सेठ को भोजन करते देखकर वह भूखा व्यक्ति
लगा कि सेठ तुम धन्य हो, जो ऐसे पदार्थ भोग रहे
मैं अन्न के बिना तरस रहा हूँ, भूखों मर रहा हूँ।
सुनकर सेठ ने कहा कि भाई! आ तू मेरे साथ बैठ
और भोजन करले, भूख का दुःख मिटाले! सेठ के
भोजन का प्रेमपूर्ण निमन्त्रण मिलने पर भी यदि वह
यह कहे कि नहीं नहीं मैं न खाऊंगा, मुझे भोजन
करना है तो वह व्यक्ति अभागा समझा जायगा!

इस बात को आप अच्छी तरह समझ गये होंगे।
निमन्त्रण को आप कभी इंकार न करेंगे। न कभी ऐसी
ही करेंगे। भूल तो धर्म कार्य मे होती है। जिस
त्र धर्म का पालन करने के कारण आप सुदर्शन को
वाद दे रहे हैं वह चारित्र धर्म आपके सामने भी मौजूद
आप धन्यवाद देकर न रह जाइये किन्तु उस चारित्र
का पालन करिये जिसके पालन से सेठ धन्यवाद के
बने हैं। धन्यवाद दे लेने से आत्मा की भूख न मिटेगी।
न के समान आप धर्म पर दृढ़ न रह सको तो भी
कुछ अंश का तो अवश्य पालन कीजिये। उसका
त्र सुनकर उसके चरित्र का कुछ अंश भी यदि जीवन

स्वयं पापी है । वह पुण्यवान् नही हो सकता, चाहे उसके पास कितनी ही ऋद्धि क्यों न हो ?

मुनीम ने उस लड़के को आश्वासन देकर अपने यहां रखा और धीरे-धीरे उसकी आदतें सुधारी । बिका हुआ मकान वापस खरीद लिया गया । उस घर में गुप्त रूप से रखे हुए रत्न निकाल कर उसे दे दिए गये । लड़के ने मुनीम से कहा कि ये रत्न आप ही के हैं, कारण मैं तो मकान बेच ही चुका था । मुनीम ने कहा—ऐसा नही हो सकता । जो वस्तु जिसकी हो, वह उसी की रहेगी । लडके ने 'मुनीम के रत्न हैं' कह कर कितना विवेक दिखाया और अपनी कृतज्ञता प्रकट की । मुनीम ने अपने सेठ के पुत्र की स्थिति सुधार दी । वह पुण्यवान् था । अब यदि सेठ के लड़के से भीख मागने के लिए कहा जाय तो क्या वह मागेगा ? कदापि नही ।

यह दृष्टान्त है । सेठ, मुनीम और लड़के के समान ईश्वर, महात्मा और संसारी जीव हैं । बहुत से साधारण लोग कहते हैं कि हम साधुओं के यहां क्यों जायं और क्यों वहां मुख बांध कर बैठें ? मैं पूछता हूँ कि मुख बांधने में उनको लाज क्यो लगती है ? वेश्या के यहां जाने में तथा अन्य बुरे काम करने मे तो लाज नही लगती । केवल मुंह बाधने में ही लाज क्यो लगती है ? कहते हैं—यह तो बूढों का काम है । इस प्रकार इस आत्मा रूप सेठ के लड़के ने विषय वासना और संसार के सग से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरादि दुर्गुणों से प्रेम कर रखा है । ऐसे समय में अन्तरात्मा को जानने वाले महात्मा का क्या कर्त्तव्य

में उतार सको तो आपका दुर्भाग्य मिटेगा और सौभाग्य का उदय होगा। संसार की सब वस्तुएं नाशवान् हैं। आप इस अविनाशी धर्म को क्यों नहीं अपनाते ? आप कहेंगे कि हम सुदर्शन के समान कैसे बन सकते हैं ? खैर, सुदर्शन के ठीक समान न बनें तो भी उसके चरित्र में से कुछ बातें अवश्य अपनाइये। कोशिश तो सब बातें अपनाने की करनी चाहिए। कीड़ी यह कहकर अपनी चाल को नहीं रोकती कि मैं हाथी की बराबरी नहीं कर सकती हूँ। वह हाथी के समान नहीं चल सकती तो भी चलना जारी रखती है और अपने खाने तथा घर बनाने का ऐसा प्रयत्न करती है कि जिसे देखकर बड़े बड़े वैज्ञानिकों को दंग रह जाना पड़ता है। आप भी अपनी शक्ति व सामर्थ्य के अनुसार आगे बढ़ने का प्रयत्न कीजिये।

सुदर्शन की कथा कहने के पूर्व क्षेत्र का परिचय दिया गया है। क्षेत्री का वर्णन करने के लिये क्षेत्र का परिचय आवश्यक है। शास्त्र में भी यही शैली है। वर्णन तो भगवान् महावीर स्वामी का करना था किन्तु प्रसंग से साथ ही चम्पा नगरी का भी वर्णन दे दिया है जैसे—

तेणं कालेणं तेणं समयेणं चम्पा नामं नयरी होत्था।

साधुओं के पास ऐश-आराम का सामान नही है, अतः उनके पास जाना अच्छा नही लगता । ज्ञानी कहते हैं, यह इनका दोष नही है । ये आत्मा की शक्ति को नहीं जानती, अतः पुद्गलानंदी बनी हुई हैं ।

कई लोग आत्मा के अस्तित्व के विषय में भी संदेह करते हैं । आत्मा नही है, ऐसी दलीलें देते हैं । इसका कारण यही है कि वे महात्माओं के पास नही जाते हैं । यदि वे सत्पुरुषों के समागम मे आने लगें तो उनका यह संदेह मिट जाय ।

मदिरा न पीना और मांस न खाना, यह जैनों का कुल-रिवाज है । इस वंश-परम्परागत रिवाज का पालन तभी तक हो सकता है जब तक लोग हमारे पास आते रहे । हमारे पास न आयें किन्तु आजकल के सुधरे हुए कहे जाने वाले लोगों की सोहवत मे रहे तो इस रिवाज का पालन नहीं हो सकता । आधुनिक सुधरे कहे जाने वाले लोग तो कहते हैं कि जैन धर्म में मांस-मदिरा-निषेध निष्कारण ही है । यदि भोजन हजम न होता हो तो थोडी शराब पीली जाय तथा शक्ति वृद्धि के लिए मांस भक्षण किया जाय तो क्या हर्ज है ? ऐसी शिक्षा पाने वाले लोग कब तक बचे रह सकते हैं ? माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे इस बात का ध्यान रखें कि हमारा लड़का बुरी सोहवत में न पड़ जाय । अपने लड़कों को धार्मिक शिक्षा दिलाने का प्रयत्न किया जाय और सदा इस बात का ख्याल रखें कि जैन-कुल में जन्म लेकर कहीं बुरी स्थिति में न पड़ जाय । प्रयत्न करने और सावधानी रखने पर भी यदि कोई लड़का न सुधरे तो

ता है । एक आदमी भारत का निवासी है और दूसरा
ोप का । क्षेत्र विपाकी गुण दोनों मे जुदा-जुदा होंगे ।
 बात दूसरी है कि कोई अपने विशेष प्रयत्न के द्वारा उस
ा को मिटा दे या अधिक बढा दे ।

मनुष्य और पशु मे जो भेद है वह क्षेत्र के कारण ही
। आत्मा दोनो की समान है । आत्मा समान होने से
ोई मनुष्य को पशु या पशु को मनुष्य नही कहता । क्षेत्र
पाकी प्रकृति के कारण भेद होता है । उसे भूलाया नहीं
ा सकता ।

आप भारतीय हैं । भारत में जन्म लेने से भारत का
त्र विपाकी गुण आप में होना स्वाभाविक है । आज
ापकी दस्तार, रफ्तार और गुफ्तार कैसी हो रही है ?
ाप जरा गौर कीजिए । दस्तार यानी कपडे, रफ्तार यानी पह-
ावा और गुफ्तार यानी बातचीत । आप भारतीय हैं मगर
या आपको भारतीय भाषा प्यारी लगती है ? प्रिय न लगे
ो यह अभाग्य ही है । अन्य देश वाले भारत की प्रशंसा
ारें और भारतीय स्वय अपने देश की अवहेलना करें, यह
भाग्य नही तो क्या है ? आज भारत के निवासी दूसरे
शो की बहुत-सी बातों पर मुग्ध हो रहे हैं । वे यह नहीं
ोचते कि दूसरे देशों की जिन बातों पर हम मुग्ध हो रहे
, वे कहां से सीखी हुई हैं । वे बातें भारत से ही अन्य
शों ने सीखी हैं । हम हमारा घर भूल गये हैं । हमारे
र में क्या क्या था, यह बात हम नही जानते । अब दूसरों
ी नकल करने चले हैं ।

एक आदमी दूसरे आदमी के यहा से बीज ले गया

करना आदि सब जुआ ही है, जिसमें हार जीत की बाजी है, वह सब जुआ है। दुःख इस बात का है कि आज तो सरकार स्वयं लाटरी खोलती है और लोग धन प्राप्त करने के लिए रुपये लगाते हैं। लाटरी भरने वाले भाई यह नही सोचते कि लाटरी खोलने वाले पहले ही कह देते हैं कि जितने रुपये टिकटो के प्राप्त होंगे, उन मे से एक दो या अधिक लाख रुपये रख लिये जायेंगे, शेष रुपये इनाम दिए जायेंगे। यह स्पष्ट मालूम होता है कि लाटरी खोलने वाले बचत करने के लिए ही लाटरी खोलते हैं। अधिक रुपये इकट्ठा करके थोड़े रुपये दे देते हैं। बहुतों से लेकर थोडों को कुछ रुपये इनाम रूप से वांट दिये जाते हैं। किन्तु लाटरी भरने वाले की मंशा यह रहती है कि अन्य लोग मरें तो मरें, हमारा नम्बर पहला निकलना चाहिए।

श्रीकृष्ण ने अपने परिवार के लोगों से जुआ, शराब और व्यभिचार छोडने के लिए कहा था, किन्तु उनके उपदेश की बातों को पैरों तले कुचल कर वे मनचाहा वरताव करने लगे थे। परिणाम यह हुआ कि एक दिन की घटना से सारा मूसल-पर्व वन गया।

लोग कहते हैं कि जैनियों में फूट है। फूट क्यों न हो, जब एक आदमी दारू पीता हो और दूसरा न पीता हो तो क्या दोनों में मेल रह सकता है? संग तभी तक निभ सकता है, जब सब का समान आचार-व्यवहार हो।

अन्त में यादवकुल के लड़कों में फूट पड़ी और वे मूसल लेकर आपस में लड़ने मरने लगे। यह देख कर श्रीकृष्ण हंसने लगे। किसी ने श्रीकृष्ण से कहा कि आपका

जो कि उसके आंगन में बिखरे पड़े थे। उसने बीज से आक[illegible]
बोये तथा वृक्ष और फल-फूल तैयार किए। एक दिन पहल[illegible]
व्यक्ति दूसरे के खेत में चला गया और कहने लगा, तुम
बड़े भाग्यशाली हो, जो ऐसे सुन्दर वृक्ष तथा फल-फूल लगा
सके हो। दूसरे ने कहा, यह आप ही का प्रताप है जो मैं
ऐसे वृक्ष लगा सका हूँ। आपके यहां से बिखरे हुए बीज मैं
ले गया था, जिनका यह परिणाम है। यह बात सुनकर
पहले आदमी को अपने घर में रखे बीजों का ध्यान आया।
इसी प्रकार विदेशों में जो तत्व देखे जा रहे हैं, वे भारत के
ही हैं। हां, वहां के लोगों ने उन तत्वों की विशेष खोज
अवश्य की है मगर बीजरूप में वे भारत से ही लिए हुए
हैं। दूसरों की बातें देखकर अपने घर को मत भूल जाओ।
घर की खोज करो।

सुदर्शन चम्पा नगरी का रहने वाला था। जैन और
बौद्ध साहित्य में चम्पा का बहुत वर्णन है। चम्पा का पूरा
विवरण उववाई सूत्र में है किन्तु उसमें से तीन बातें कह
देने से श्रोताओं को ख्याल आ जायगा कि चम्पा कैसी थी।
चम्पा का वर्णन करते हुए उववाई सूत्र में कहा गया है:-

[illegible]णं कालेणं तेणं समयेणं चम्पा नामं नयरी होत्था रिद्ध[illegible]

परमात्मा की सेवा करे तो उसका कल्याण निश्चित है। अन्तरात्मा की शक्ति को जानने वाले बहिरात्मा पर क्रोध या द्वेष नही करते। वे तो सदा यही कहेगे कि आत्मस्वरूप को जान कर परमात्मा का भजन करो तो भलाई है।

साराश यह है कि 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' परमात्मा बन कर परमात्मा का भजन करो। यह समझो कि मेरा और परमात्मा का आत्मा समान है। परमात्मा निर्मल है, मैं अभी मलिन हूँ। इस मलिनता को मिटाने के लिए ही परमात्मा का भजन करता हूँ। महात्माओ की शरण पकड कर भजन करने से किसी प्रकार की कठिनाई नही होगी।

चरित्र चित्रण—

अब मैं इस प्रकार भजन करने वाले की बात कहता हूँ।

तिनपुर सेठ श्रावक दृढ़ धर्मी, यथा नाम जिनदास।
अर्हद्दासी नारी खासी, रूप शील गुणवान रे ।।धन०।।

चम्पानगरी का वर्णन किया गया है। नगरी की रमणीयता, उसकी आवश्यकताएं, राजा रानी और प्रजा आदि के कर्त्तव्य की चर्चा बहुत की जा सकती है किन्तु अभी इतना ही कहता हूँ कि चम्पा में बाह्य सुधार ही न थे किन्तु अन्तरंग सुधार भी थे।

आज बाह्य सुधार तो है लेकिन भीतर बहुत बिगाड़ है। उस जमाने में मोटर, बिजली, ट्राम आदि न थे फिर भी उस समय की स्थिति बहुत सुधरी हुई थी। आप कहेंगे

तो नगर की शोभा नही हो सकती । समृद्धि के न होने से लोग भूखों मरने लगें । चम्पा नगरी धन धान्य से समृद्ध थी । धन के साथ धान्य की भी आवश्यकता है । केवल धन हो और धान्य न हो तो यह कहावत लागू होती है कि—

सोनां नी चलचलाट, अन्ननी कलकलांट ।

जीवन निभाने के लिए धान्य की भी पूरी आवश्यकता होती है । धन और धान्य कहने से जीवनोपयोगी प्रायः सब वस्तुएं आ जाती हैं । जीवनोपयोगी वस्तुओं के लिए चम्पा नगरी किसी की मोहताज न थी । वहां सब आवश्यक चीजें पैदा होती थी । प्राचीन समय मे भारत के हर ग्राम मे जीवनोपयोगी चीजे पैदा होती थीं और इस दृष्टि से भारत का हर ग्राम स्वतन्त्र था । ऐसा न था कि अमुक चीज आना बन्द हो गया है, अतः अब क्या किया जाय ?

पुरातन साहित्य हमे बताता है कि उस समय भारत का प्रत्येक ग्राम स्वतन्त्र था । कोई भी गांव ऐसा न था कि जहाँ आवश्यक अन्न और वस्त्र पैदा न हो । अन्न तो सब जगह पैदा होता ही था किन्तु वस्त्र भी सब गावो में बनाये जाते थे । जहां रूई न होती थी, वहा ऊन होती थी, जो रूई से भी मुलायम थी । हर ग्राम में कपडे बुनने वाले लोग रहते थे । इस प्रकार भारत का हर गाँव स्वतन्त्र था, नगर तो स्वतन्त्र थे ही । उनमे विशेष कला-प्रधान चीजें होती थीं ।

चम्पा में ऋद्धि भी थी और समृद्धि भी । ऋद्धि और समृद्धि के होने पर भी स्वचक्री राजा के अभाव मे कष्ट होता

जाता है वहां के लिये भी सुनने में आया है कि सौ में से पिच्चानवे लग्न संबंध वापस टूट जाते हैं। यह है वहा की सभ्यता। मैं यह नही कहता है कि बाह्य ठाठ बाठ न हो किन्तु आन्तरिक सुधार होना आवश्यक है।

चम्पा जैसी बाहर से सुन्दर थी, वैसी ही भीतर से सुसंस्कृत थी। जिस प्रकार खान मे से एक हीरा निकलने पर भी वह हीरे की खान कही जाती है जब कि मिट्टी पत्थर उसमे बहुत होते हैं, इसी प्रकार किसी नगर में एक भी महापुरुष हो तो वह उस सारे नगर को प्रसिद्ध कर देता है। अवतार ज्यादा नही होते। मगर एक अवतार ही सारे ससार को प्रकाशित कर देता है।

चम्पा आर्य क्षेत्र में गिनी गई है। वहा जिनदास नामक सेठ रहता था। चम्पा में भगवान् महावीर कई बार पधारे थे। कौणिक भी चम्पा में ही हुआ है। यह नहीं कहा जा सकता कि चम्पा एक थी या दो। हम इतिहास नही सुना रहे हैं किन्तु धर्मकथा सुना रहे हैं। धर्म से अनेक इतिहास निकलते हैं। अतः धर्मकथा से इतिहास को मत तोलो। यह धर्मकथा है। इसमे बताये हुए तत्व की तरफ ख्याल करो। भगवान् महावीर के समय में ही चम्पा के कौणिक और दधिवाहन दो राजा शास्त्रों में वर्णित हैं। अतः कौणिक और दधिवाहन दोनों की चम्पा एक ही थी अथवा अलग अलग, यह कहा नही जा सकता।

जिनदास चम्पा नगरी में रहता था। वह आनन्द श्रावक के समान श्रावक था। उसकी स्त्री का नाम अर्हद्दासी था, जो श्राविका थी। ये दोनों नाम वास्तविक हैं

है। चम्पा इस बात से भी वंचित न थी। 'ठिम्मिए' विशेषण यही बतलाता है कि चम्पा की प्रजा बहादुर थी। उसे न स्वचक्री राजा लूट सकता था और न परचक्री। अपने राजा का अत्याचार भी प्रजा सहन नहीं करती थी और न अन्य देशस्थ राजा का। जो स्वयं निर्बल होता है, उसी पर दूसरों का जोर चलता है। सबल पर किसी का बल नहीं चलता। लोग कहते हैं कि देवी बकरे का दान मांगती है। मैं पूछता हूं कि देवी बकरे का बलिदान ही क्यों मांगती है, शेर का क्यों नहीं? बकरा निर्बल है और शेर सबल है, अतः ऐसा होता है।

शास्त्र में चम्पा का इस प्रकार वर्णन है। कोई भाई यह कहे कि महाराज त्यागी लोगों को इस प्रकार वर्णन करने की क्या आवश्यकता थी, तो उसका उत्तर यह है कि फल बताने के पूर्व वृक्ष का और बीज का परिचय करना भी जरूरी होता है। जो फल बताया जा रहा है, वह जादू का तो नहीं है। अतः फल के पहले वृक्ष का वर्णन भी आवश्यक है। शील के साथ चम्पा का भी इसीलिए वर्णन है। इस वर्णन को सुनकर आप भी सच्चे नागरिक बनिये और शील का पालन कर आत्मकल्याण कीजिये।

७ : अरिष्टनेमि की दया

"श्री जिन मोहनगारो छे, जीवन प्राण हमारो छे।"

यह बाईसवे तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि की प्रार्थना है। परमात्मा की प्रार्थना एक प्रकार से परमात्मा की भक्ति है। ज्ञानियों ने अनेक अंग बताये हैं। उन में प्रार्थना भी भक्ति का एक मुख्य अग है। दार्शनिकों ने अपने तत्व का पोषण करने के लिए अनेक रीति से प्रार्थना की है। जैन एकान्तवादी नही हैं। जैन दर्शन प्रत्येक वस्तु का अनेक दृष्टियो से विचार करता है। वह वस्तु को एक दृष्टि से देखता है और अनेक दृष्टियों से भी। अतः जैन की प्रार्थना कुछ और ही है।

भक्ति के साकार और निराकार के भेद से दो भेद हैं। प्रार्थना को साकार भेद से देखना या निराकार भेद से, एक प्रश्न है। ज्ञानी कहते हैं, दोनों का समन्वय किया जाय। दोनों भेदों को मिला कर प्रार्थना की जाय। प्रार्थना पर अनेक वार बोल चुका हूं, आज भी कुछ कहूंगा।

ज्ञानी जन कहते हैं कि साकार प्रार्थना के लिए तीर्थंकर और निराकार प्रार्थना के लिए सिद्ध आदर्श रूप हैं।

८ : धर्म का अधिकारी

"मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी······।"

यह भगवान् मल्लिनाथ की प्रार्थना है। यदि इस र्थना के विषय में कोई महावक्ता सिद्धात की खोज करके ाख्यान दे तो बहुत लोगों की उल्टी समझ दूर हो जाय, सा मेरा ख्याल है। मुझे शास्त्र का उपदेश करना है तः इस विषय मे इतना ही कहता हूँ कि भक्ति और र्थना के मार्ग में पुरुषों को अभिमान नही करना चाहिए। भिमान भूले बिना भक्तिमार्ग पर नहीं चला जा सकता। हंकार दूर किए बिना भक्तिमार्ग प्राप्त नही हो सकता। ा पुरुष हैं, इस बात का अहकार त्याग कर, चाहे स्त्री चाहे पुरुष, जो भी महापुरुष हुए हैं, उन सब की भक्ति तल्लीन हो जाना चाहिए।

बहुत से पुरुष स्त्रीजाति को तुच्छ गिनते हैं और ने को वड़ा मानते हैं किन्तु यह उनकी भूल है। दुनियां सब से बडा पद तीर्थङ्कर का है। जब कि स्त्री तीर्थंकर सकती है, वैसी हालत मे वह तुच्छ कैसे मानी जा सकती और पुरुष को किस बात का अभिमान करना चाहिए?

यादवो में करुणा बुद्धि उत्पन्न करनी थी। वे केवल मुख से कहने वाले ही न थे किन्तु करके दिखाने वाले थे। उनके सब काम किसी तत्वपूर्ण मुद्दे को लिए हुए थे। जीव-रक्षा के कार्य को सिद्ध करने के लिए ही वे बरात सजा कर विवाह करने के बहाने से आये थे।

सुनि पुकार पशु की करुणा करि जानि जगत सुख फीको ।
नव भव नेह तज्यो जीवन मे उग्रसेन नृप धी को ॥

जब भगवान् तोरणद्वार पर आ रहे थे तब उन्हें उस समय भारतवर्ष में फैली हुई महान् हिंसा के दर्शन हो रहे थे। उस समय यादवी हिंसा और यादवी अत्याचार बहुत बढ गये थे, अपनी सीमा लांघ चुके थे। यादवों का अन्याय और अत्याचार सारे ससार फैल रहा था। उनके द्वारा हिंसा के घोर काण्ड हुआ करते थे। न केवल विवाहादि प्रसंगों पर किन्तु हर प्रसंग पर पशुओं की घोर हिंसा की जाती थी। उस समय मांस मदिरा और विषय सेवन एक साधारण बात हो गई थी। इस पाप को रोकने के लिए ही भगवान् नेमिनाथ ने विवाह का स्वांग रचा था और बरात सजाई थी।

प्रत्येक बात पर एकान्त दृष्टि से विचार नही करना चाहिए किन्तु अनेकान्त दृष्टि से सोचना चाहिए। भगवान् तीन ज्ञान के धारी थे। वे जानते थे कि मेरे पूर्वज इक्कीस तीर्थंकर यह फरमा गये हैं कि नेमजी ब्रह्मचारी रहेंगे। यह जानते हुए भी भगवान् नेमिनाथ विवाह करने के लिए क्यों चले थे ? इस विषय पर यदि बारीकी से विचार

अतः अहंकार छोड़ कर विचार करो और गुणों के स्थान पर द्वेष मत लाओ।

भगवान् मल्लिनाथ को नमस्कार करके अब मैं उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन की बात शुरू करता हूं। कल महा और निर्ग्रन्थ शब्दों के अर्थ बताये गये थे। इस द्वादशांग वाणी को सुनने से क्या-क्या लाभ हैं, यह बताने के लिए पूर्वाचार्यों ने बहुत प्रयत्न किए हैं। उन्होंने शास्त्र की पहिचान के लिए अनुबन्ध-चतुष्टय किया है। इस बीसवें अध्ययन में यह अनुबन्ध-चतुष्टय कैसे घटित होता है, यह देखना है। हम इस बात की जांच करें कि इस अध्ययन में भी विषय, प्रयोजन, अधिकारी और सम्बन्ध हैं या नहीं।

बीसवें अध्ययन का विषय उसके नाम मात्र से ही प्रकट है। अध्ययन का नाम महानिर्ग्रन्थ अध्ययन है, जिससे स्पष्टतया मालूम हो जाता है कि इस अध्ययन में महान् निर्ग्रन्थ की चर्चा होगी। नाम के सिवा प्रथम गाथा में यह स्पष्ट कहा गया है कि मैं अर्थ धर्म में गति कराने वाले तत्त्व की शिक्षा देता हूँ। इससे यह बात निश्चित हो गई कि इस अध्ययन में सांसारिक बातों की चर्चा न होगी।

[जिन

करोगे तो मालूम होगा कि भगवान् ने साकार भगवान्
कैसा रूप रचा था। नेमिनाथ ने साकार भगवान् का जं
चरित्र रचा था, वैसा चरित्र मेरी समझ से दूसरे किसी
नही रचा है। उनकी बराबरी का उदाहरण मुझे नही दिख
देता है। यदि कोई ऐसा दूसरा उदाहरण बताये तो
मानने के लिए तैयार हूँ किन्तु ऐसा उदाहरण मिल
बहुत ही कठिन है। जैसा रचनात्मक काम भगवान् अरि
नेमि ने करके दिखाया, वैसा किसी ने नही किया।

यादव कुल मे जैसी हिंसा और पाप फैले हुए
उनके विषय मे भगवान् यह सोचा करते थे कि मैं जि
कुल मे उत्पन्न हुआ हूँ, उस कुल के युवक इस प्रकार
घोर कार्य करे, यह मैं कैसे सहन कर सकता हूँ। भगव
चुपचाप सारी परिस्थिति देख रहे थे और किसी अव
की प्रतीक्षा कर रहे थे। तीन सौ वर्ष तक वे अवसर
प्रतीक्षा करते रहे। अन्त में यह निश्चय किया कि इस प
के लिए दूसरों को दोषी बताने की अपेक्षा इसे मिटाने
स्वय ही प्रयत्न करना चाहिए।

आजकल के लोग दूसरों को दोष देना जानते
मगर खुद का कर्त्तव्य नहीं समझते। यदि लोग अपना कर्त्त
देखने लगें और दूसरों पर दोषारोपण करना छोड़ दें
ससार को सुधरने में क्या देर लगे? जब मैं जंगल ग
था तब रास्ते मे एक दीवार पर यह लिखा हुआ देखा
'आलस्य, मनुष्य के लिए जीवित कब्र है।' यदि विच
किया जाय तो यह वाक्य कितना अच्छा और ठीक है
आलस्य ही मनुष्य को जीवित कब्र में डालता है। आल

। है। मैले कपडे पर रंग नही चढ़ता, मैले कपड़े पर रंग चढाने लिए पहिले उसे साफ करना पडता है। इसी प्रकार हृदय रूपी त्र यदि मैला हो तो उस पर उपदेश रूपी रग नही चढ सकता। ; बात स्वाभाविक है। मुझे यकीन है कि आपके सब ड़े मलीन नही हैं अर्थात् आपका हृदय सर्वथा मलीन ही है। यदि सर्वथा मलीन होता तो आप यहा व्याख्या वणार्थ भी उपस्थित न होते। आप यहा आये हैं, इससे ; प्रकट है कि आपका हृदय सर्वथा गन्दा नही है। जो ड़ी बहुत गदगी भी हृदय मे रही हुई है, उसे दूर किए ना धर्म का रग अच्छी तरह नही चढ़ सकता।

शास्त्रकारो का कथन है कि धर्मस्थान पर जाने के ; घर से निकलते ही पहले 'निस्सीही' शब्द का उच्चारण रना चाहिए। धर्मस्थान पर पहुच कर भी निस्सीही हना चाहिए। फिर गुरु के पास जाकर भी निस्सीही हना। इस प्रकार तीन बार निस्सीही शब्द का उच्चारण रने का क्या कारण है ? घर से निकलते वक्त निस्सीही हने का मतलब यह है कि धर्मस्थान पर जाने के पूर्व ही ासारिक प्रपञ्चपूर्ण विचारों को मन से निकाल देना ाहिए। निस्सीही शब्द का अर्थ है, पापपूर्ण क्रियाओं का नषेध करना, उनको रोक देना।

जो संसार के कामों और विचारों को छोड़ कर र्मस्थान पर जाता है, वही पुरुष धर्मस्थान में पहुंचने के मकसद को सिद्ध कर सकता है। जो घर से व्यवहार के प्रपञ्चों को दिमाग में रख कर धर्मस्थान पर जाता है, वह वहां जाकर क्या करेगा ? वह धर्मस्थान में भी

यादवों में करुणा बुद्धि उत्पन्न करनी थी। वे केवल मुख से कहने वाले ही न थे किन्तु करके दिखाने वाले थे। उनके सब काम किसी तत्वपूर्ण मुद्दे को लिए हुए थे। जीव-रक्षा के कार्य को सिद्ध करने के लिए ही वे बरात सजा कर विवाह करने के बहाने से आये थे।

सुनि पुकार पशु की करुणा करि जानि जगत सुख फीको।
नव भव नेह तज्यो जीवन मे उग्रसेन नृप धी को॥

जब भगवान् तोरणद्वार पर आ रहे थे तब उन्हें उस समय भारतवर्ष में फैली हुई महान् हिंसा के दर्शन हो रहे थे। उस समय यादवी हिंसा और यादवी अत्याचार बहुत बढ गये थे, अपनी सीमा लांघ चुके थे। यादवो का अन्याय और अत्याचार सारे ससार फैल रहा था। उनके द्वारा हिंसा के घोर काण्ड हुआ करते थे। न केवल विवाहादि प्रसंगों पर किन्तु हर प्रसंग पर पशुओं की घोर हिंसा की जाती थी। उस समय मांस मदिरा और विषय सेवन एक साधारण बात हो गई थी। इस पाप को रोकने के लिए ही भगवान् नेमिनाथ ने विवाह का स्वांग रचा था और बरात सजाई थी।

प्रत्येक बात पर एकान्त दृष्टि से विचार नही करना चाहिए किन्तु अनेकान्त दृष्टि से सोचना चाहिए। भगवान् तीन ज्ञान के धारी थे। वे जानते थे कि मेरे पूर्वज इक्कीस तीर्थंकर यह फरमा गये हैं कि नेमजी ब्रह्मचारी रहेगे। यह जानते हुए भी भगवान् नेमिनाथ विवाह करने के लिए क्यों चले थे ? इस विषय पर यदि बारीकी से विचार

प्रपञ्च ही करेगा । धर्म का क्या लाभ ग्रहण करेगा ? धर्म स्थान तक पहुंचने के बाद 'निस्सीही' इसलिये कहा जाता है कि धर्मस्थान तक तो गाडी घोडा आदि सवारी पर सवार होकर भी जाया जाता है लेकिन धर्मस्थान में ये सवारियां नहीं जा सकतीं, अतः इनका निषेध भी इष्ट है।

धर्मस्थान तक पहुंच कर अन्दर कैसे प्रवेश करना, इसके लिये पांच अभिगमन शास्त्रो में बताये गये हैं। भगवान् या अन्य महात्माओं के दर्शन के लिए धर्मस्थान में पहुंचने पर पांच अभिगमन का वर्णन शास्त्रो में आया है । प्रथम अभिगमन सचित्त द्रव्य का त्याग है । साधु के पास पान फूल आदि सचित्त द्रव्य नहीं ले जा सकते । अतः उनको त्याग कर फिर दर्शनार्थ जाना चाहिये । दूसरा अभिगमन उन अचित्त द्रव्यों का भी त्याग करके साधु के पास जाना चाहिये, जिनका त्याग जरूरी हो । अस्त्र शस्त्रादि पास हो तो उन्हें छोड़ कर साधु के समीप जाना चाहिये । शस्त्रादि लेकर साधु के पास जाना अनुचित है तथा वस्त्रादि का संकोच करना भी दूसरे अभिगमन में है । इसका अर्थ नंगे होकर साधु दर्शनार्थ जाना नहीं है । किन्तु जो वस्त्र बहुत लंबे हों और जिनसे पास वालों की आसातना हो सकती

के कारण ही मनुष्य अपने कर्त्तव्य की निगाह नहीं करता और दूसरो पर दोष थोपता है ।

भगवान् अरिष्टनेमि अपना कर्त्तव्य देखते थे, अतः आलस्य त्याग कर रचनात्मक काम किया। यदि वे शक्ति से काम लेना चाहते तो भी ले सकते थे क्योकि उन में श्रीकृष्ण को पराजित करने जितनी शक्ति थी । हाथ में चक्र लेकर उसका डर दिखा कर भी लोगों से कह सकते थे कि हिंसा बंद करते हो या नही ? और लोग भी उनके डर के मारे हिंसा बद कर सकते थे । किन्तु भगवान् जोर जुल्म पूर्वक धर्म–प्रचार करने के विरोधी थे । वे जानते थे कि शक्ति के द्वारा यद्यपि लोग ऊपरी हिंसा करना छोड़ देंगे किन्तु उनकी भावना मे जो हिंसा होगी, वह ज्यों की त्यों कायम रहेगी बल्कि जोर जुल्म का शिकार बना हुआ व्यक्ति भाव–हिंसा अधिक ही करता है । भगवान् ने शक्ति–प्रयोग नही किया । हिंसा बंद कराने का काम बड़ा गंभीर है । हिंसा को बंद कराने के लिए हिंसा की सहायता लेना ठीक नहीं है । इस प्रकार हिंसा बद भी नही हो सकती । खून का भरा कपड़ा खून में धोने से कैसे साफ हो सकता है ? अहिंसा के गंभीर तत्व की रक्षा करने के लिए भगवान् अवसर की प्रतीक्षा करते रहे । जब उन्होने उपयुक्त अवसर जान लिया तब भी लोगों से यह नही कहा कि मैं अमुक प्रयोजन से बरात सजा रहा हूँ । अतः लोगों को सच्ची हकीकत मालूम न थी । भगवान् नेमिनाथ को बरात सजा कर विवाह करने के लिए जाते देख कर इन्द्र भी आश्चर्य मे पड़ गये और विचार करने लगे कि इक्कीस तीर्थंकरों से हमने ऐसा सुना है कि बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ बाल ब्रह्म-

य यह कि मैं समस्त सांसारिक प्रपञ्चों का निषेध
रता हूँ। निस्सीही का उच्चारण भी कर लिया गया हो
ार अभिगमन भी कर लिए गये हो किन्तु यदि मन ससार
ी बातो मे गुंथा हुआ ही रहा तो धर्मस्थान मे पहुचने
ा उद्देश्य हासिल नही हो सकता। अतः मन को एकाग्र
रके यह निश्चिय करना चाहिए कि हमे श्रेय सिद्ध
रना है।

सारांश यह कि यदि आपको सिद्धांत सुनने की रुचि
तो मन को स्वच्छ वना कर आईये। मन स्वच्छ बनाने
ा भार मुझ पर डाल कर मत आईये। धोबी का काम
ावी करता है और रगरेज का काम रंगरेज करता है।
नों का काम एक पर डालने से वजन बढ जाता है।
आप पर धर्म के सिद्धान्तो का रंग चढाना चाहता हूँ।
ा चढाया जा सकता है। किन्तु शर्त यह है कि आपका
नरूपी वस्त्र स्वच्छ होना चाहिये। मन स्वच्छ बना कर
ाने का काम आपका है और उस पर धर्म का रग चढाने
ा काम मेरा है। धोवी वस्त्र को जितना साफ निकाल
र लायेगा, रंगरेज उतना ही आवदार रंग चढ़ा सकेगा।
ारेज को यश दिलाने का काम धोबी पर निर्भर है।
ाप लोगो की तरह यदि मुझे भी मान-प्रतिष्ठा की चाह
दय में वनी रही तो मैं धर्म का सच्चा उपदेश न दे
कूंगा। धर्म का उपदेश देने के लिये उपदेशक को भी स्वच्छ
नना चाहिए। उपदेशक और श्रोता दोनों स्वच्छ हों, तभी
र्म का रंग अच्छी तरह चढ़ सकता है।

इस अध्ययन का विपय तो वता दिया गया है।

जिनसे इनकी मेहमानदारी करे। खान पान और पान-सुपारी इनके पास बहुत है। इसके लिए ये बिना आमन्त्रण नहीं आ सकते। ये जैसी मेहमानी लेने आये हैं, मैं यथाशक्ति देने का प्रयत्न करूंगा। मेरे ख्याल से ये सदुपदेश सुनने आये हैं।

इन्द्र सोच रहे हैं कि इक्कीस तीर्थंकरों की कही हुई वात ये कैसे लोप रहे हैं ? देखे क्या होता है ? श्रीकृष्ण से यह कह दिया, आप चिन्ता न करें। हम किसी प्रकार का विघ्न न करेंगे। हम तो चुपचाप कौतुक मात्र देखेंगे। आप भी भगवान् के साकार चरित्र को देखिये।

बरात के साथ भगवान् तोरणद्वार पर आ रहे हैं। तोरणद्वार के मार्ग मे बाडों और पिंजरों मे बंद किये हुए अनेक पशु-पक्षी रोके हुए थे। कुछ पशु-पक्षी मनुष्यों के सहवास में रहने वाले थे और कुछ जंगल के निर्दोष प्राणी थे। उन पशुओ के मन में बहुत खलबली मची हुई थी।

लोग सोचते होंगे कि घवडाने या न घवड़ाने में पशु-पक्षी क्या समझते होगे। किन्तु मौत से सब जीव डरते हैं और उससे बचना चाहते हैं। कोठारी बलवंतसिंह जी ने उदयपुर की एक घटना मुझे सुनाई थी। उन्होंने कहा—उदयपुर के कसाइयों के यहां से एक भेड़ भाग निकला। कसाई लोग उसे कतल करने लेजा रहे थे। वह किसी तरह अपनी जान बचा कर भाग गया और पिछोला नामक तालाब में कूद गया। तैरता तैरता वह उस पार पहुंच गया तथा पहाड़ों में भाग गया। वह तीन दिन तक पहाड़ों में रहा लेकिन किसी भी हिंसक पशु ने उसे हाथ न लगाया। तीन दिन

लेकिन अब यह जानना चाहिए कि इस अध्ययन के कहने का क्या प्रयोजन है ? धर्म में गति कराना इस अध्ययन का प्रयोजन है । अर्थात् साधुजीवन की शिक्षा देना, इस अध्ययन का प्रयोजन है ।

आप कहेंगे कि यदि साधु-जीवन की शिक्षा देना ही इस अध्ययन का प्रयोजन है तो हम गृहस्थ लोगों को यह अध्ययन आप क्यों सुनाना चाहते हैं ? पहले आप लोग यह बात समझ लें कि साधुजीवन की शिक्षाएं आपको भी सुननी आवश्यक हैं या नहीं ? आपने अपने जीवन का ध्येय क्या नक्की किया है ? आप गृहस्थ आश्रय में हैं और साधु साध्वाश्रम में हैं । सब क्रियाएं अपने अपने आश्रम के अनुसार करना ही शोभनीय है । किन्तु गृहस्थ होने का अर्थ यह नहीं है कि वह धर्म का पालन न करे । यदि गृहस्थ धर्म का पालन नहीं कर सकते हों तो भगवान् जगत्-गुरु कैसे कहलाते ? भगवान् साधु-गुरु कहलाते । भगवान् जगत् गुरु कहलाते हैं । गृहस्थ जगत् में है, अतः गृहस्थ भी धर्म-पालन का अधिकारी ही है । दूसरी बात गृहस्थ जीवन का उद्देश भी आगे जाकर साधुजीवन व्यतीत करने का है, अतः बात आगे जाकर आचरणों में लानी है, उसका श्रवण पहले से ही कर लिया जाय तो क्या ? अतः

सुखी नहीं हो। यदि तुम सुखी होते तो ये पशु-पक्षी दुःखी नही हो सकते। अमृत के वृक्ष मे अमृतमय ही फल लगता है। वह ज़हरीला फल नही दे सकता। क्षीरसागर के पानी से किसी को विप नही चढ सकता। जो दवा लाभदायक है वह किसी को मार नही सकती। अर्थात् जो जैसा होता है, उसका फल भी वैसा ही शुभ या अशुभ होता है। यदि तुम खुद दुःखी हो तो तुम से दूसरा कोई सुखी नही हो सकता। और यदि तुम सुखी हो तो दूसरा तुम से दुःखी नहीं हो सकता। जो सुखी है, उसमे से सब के लिए सदा सुख ही निकलेगा, दुःख कदापि नही निकलता। तुम्हारे आश्रित प्राणी दुःखी हैं और सुख के अभिलापी हैं। उनके दुःख दूर कीजिये। आज आप लोगों में दुःख है इसी कारण अन्य लोग भी दुःखी हैं। आप लोग अपने दुःख को दूर करने के लिये भगवान् से प्रार्थना करिये।

भगवान् का प्रश्न सुन कर सारथी कहने लगा कि आप यह क्या पूछ रहे हैं? क्या आपको यह मालूम नहीं है कि ये पशु यहां क्यों लाये गये है?

> तुज्झ विवाह कज्जमि भोयावेऊं बहुं जणं।
>
> सोऊण तस्स वयणं बहुपाणि विणासणं॥

हे भगवान्! आपके विवाह में बहुत लोगों को मिलाने के लिए ये प्राणी बन्द करके रखे गये हैं। इन प्राणियों को मार कर इनके मांस से बहुत लोगों को भोजन दिया जायगा।

ाय यह कि मैं समस्त सासारिक प्रपञ्चों का निषेध
रता हूँ । निस्सीही का उच्चारण भी कर लिया गया हो
ौर अभिगमन भी कर लिए गये हो किन्तु यदि मन संसार
ो बातो मे गुंथा हुआ ही रहा तो धर्मस्थान मे पहुंचने
ा उद्देश्य हासिल नही हो सकता । अतः मन को एकाग्र
रके यह निश्चिय करना चाहिए कि हमे श्रेय सिद्ध
रना है ।

सारांश यह कि यदि आपको सिद्धांत सुनने की रुचि
तो मन को स्वच्छ वना कर आईये । मन स्वच्छ बनाने
ा भार मुझ पर डाल कर मत आईये । धोबी का काम
ावी करता है और रगरेज का काम रंगरेज करता है ।
ानो का काम एक पर डालने से वजन बढ जाता है ।
आप पर धर्म के सिद्धान्तो का रंग चढ़ाना चाहता हूँ ।
ा चढाया जा सकता है । किन्तु शर्त यह है कि आपका
नरूपी वस्त्र स्वच्छ होना चाहिये । मन स्वच्छ बना कर
ाने का काम आपका है और उस पर धर्म का रग चढाने
ा काम मेरा है । धोबी वस्त्र को जितना साफ निकाल
र लायेगा, रगरेज उतना ही आबदार रंग चढ़ा सकेगा ।
ारेज को यश दिलाने का काम धोबी पर निर्भर है ।
ाप लोगों की तरह यदि मुझे भी मान-प्रतिष्ठा की चाह
ृदय में बनी रही तो मैं धर्म का सच्चा उपदेश न दे
ूंगा । धर्म का उपदेश देने के लिये उपदेशक को भी स्वच्छ
ाना चाहिए । उपदेशक और श्रोता दोनो स्वच्छ हों, तभी
र्म का रंग अच्छी तरह चढ सकता है ।

इस अध्ययन का विषय तो बता दिया गया है ।

जो पाप ही को नही जानता, उसे पाप का भय कब हो सकता है ? लोकलाज के भय से पाप न करना और दया धर्म से प्रेरित होकर पाप न करने में बड़ा अन्तर है। यदि धर्म-बुद्धि से अनुप्राणित होकर पाप न किया जाय तो संसार सुखी हो जाय।

पाप का स्वरूप समझने की आपकी उत्सुकता बढ़ रही होगी। मान लीजिये, आप किसी बैल गाड़ी में बैठे हैं। चलते-चलते गाडी रुक जाय तो आप ख्याल करेंगे कि गाडी में कुछ वस्तु अटक गई है जिससे गाडी रुकी है। इसी प्रकार हमारी व दूसरे की जीवन-नौका चलते-चलते जहां रुक जाय, वहां समझ लेना चाहिए कि पाप है। आत्मोन्नति की गाडी जब भी रुक जाय तब समझ जाना चाहिये कि यह पाप है।

क्या वे पशु-पक्षी भगवान् का विवाह रोक रहे थे, जिससे कि भगवान् को इतना गहरा विचार करना पड़ा ? नही। वे जीव विवाह में बाधक न थे किन्तु भगवान् नेमि-नाथ के हृदय में भगवती दया माता निवास कर रही थी, जो उनको मुक पशुओ की करुण पुकार सुनने में असमर्थ बना रही थी। आप लोगो को अपनी गाड़ी की रुकावट तो समझ में आ सकती है मगर यह बात समझ में नहीं आती। भगवान् इन बातों को समझते थे ? उन्होने सोचा कि मेरा विवाह शान्तिकारी तथा सुखकारी नही है। यदि विवाह शान्तिकारी या सुखकारी होता तो ये मूक पशु पीड़ा न पाते। जिस काम में दीन-हीन गरीब लोग या पशु-पक्षी सताये जायं, वह काम किसी के लिए भी अच्छा या शुभ-कारी नहीं हो सकता।

लेकिन अब यह जानना चाहिए कि इस अध्ययन के कहने का क्या प्रयोजन है ? धर्म मे गति कराना इस अध्ययन का प्रयोजन है । अर्थात् साधुजीवन की शिक्षा देना, इस अध्ययन का प्रयोजन है ।

आप कहेगे कि यदि साधु-जीवन की शिक्षा देना ही इस अध्ययन का प्रयोजन है तो हम गृहस्थ लोगो को यह अध्ययन आप क्यो सुनाना चाहते हैं ? पहले आप लोग यह बात समझ लें कि साधुजीवन की शिक्षाए आपको भी सुननी आवश्यक हैं या नही ? आपने अपने जीवन का ध्येय क्या नक्की किया है ? आप गृहस्थ आश्रय मे हैं और साधु साध्वाश्रम मे हैं । सब क्रियाए अपने अपने आश्रम के अनुसार करना ही शोभनीय है । किन्तु गृहस्थ होने का अर्थ यह नही है कि वह धर्म का पालन न करे । यदि गृहस्थ धर्म का पालन नही कर सकते हो तो भगवान् जगत्-गुरु कैसे कहलाते ? भगवान् साधु-गुरु कहलाते । भगवान् जगत् गुरु कहलाते हैं । गृहस्थ जगत् मे है, अत गृहस्थ भी धर्म-पालन का अधिकारी ही है । दूसरी बात गृहस्थ जीवन का उद्देश भी आगे जाकर साधुजीवन व्यतीत करने का है, अत बात आगे जाकर आचरणो मे लानी है, उसका श्रवण पहले से ही कर लिया जाय तो क्या न ? अत.

कहेंगे कि यदि हम दूध का उपयोग करने में लम्बा विचार करने लगे तो जीवन निर्वाह कठिन हो जाता है। तो क्या आपके पूर्वज इस बात को नहीं समझते थे? पहले के लोग जिस का घी-दूध खाते थे, उसकी रक्षा करते थे। किन्तु आज के लोग खाना तो जानते हैं मगर रक्षा करना नहीं जानते। जैसे आज यह कह दिया जाता है कि हम क्या करें, हम तो पैसे देकर दूध मोल लाते हैं। गायें वाले गायों की क्या हालत करते हैं, इस से हमें क्या मतलब? उसी प्रकार भगवान् अरिष्टनेमि भी कह सकते थे कि बाड़े में बंधे हुए पशुओं से क्या मतलब? मैंने कहां पशुओं को बंधवाया है? मेरी भावना भी बन्धवाने की न थी। किन्तु भगवान् ने ऐसा नही कहा। उस विवाह-यज्ञ के पाप के बोझ को भगवान् ने अपने सिर पर स्वीकार किया। उनके निमित्त से होने वाली हिंसा को उन्होने अपना पाप माना और उसमें अपना श्रेय नही देखा। आप लोग जो मोल का दूध पीते हो उसमें होने वाली हिंसा को आप अपनी हिंसा मानते हो या नही? यह हिंसा किसके निमित्त से हुई है, जरा विचार कीजिये।

सुना है कि मेहसाणा और हरियाणा की बड़ी-बड़ी भैंसें बम्बई में दूध के लिए लाई गई हैं। घोसी लोग एक भैंस दो-दो से तीन-तीन सौ रुपये देकर खरीदते हैं। जब तक वह भैंस दूध देती है और दूध से खर्च आदि की पड़त ठीक बैठती है, तबतक रखी जाती है, बाद में कसाई के हाथ बेच दी जाती है। कसाईखानों में भैंसें किस बुरी तरह कत्ल कर दी जाती हैं, इसका विचार करें तब पता लगे कि मोल का दूध खाना कितना हराम है! जब भैंसें दूध देती हैं तब घोसी लोग उन्हें तबेले में बांध रखते हैं। बड़ी तंग जगह

नहीं है ? जरूरत अवश्य है। आप यहां किसी सांसारिक कामना की पूर्ति करने के लिये नहीं आये हैं किन्तु धर्म करने की आपकी रूचि है, अतः आये हैं। इस प्रकार इस धर्म शिक्षा से आप गृहस्थो का भी प्रयोजन है। यदि यह शिक्षा केवल साधुओ के काम की ही होती तो साधु लोग किसी एकान्त शान्त स्थान में बैठ कर चर्चा कर लेते। आप गृहस्थों के बीच मे आकर इसका वर्णन न करते। गृहस्थों को भी इस शिक्षा की आवश्यकता है, यह अनुभव करके ही आपको यह सुनाई जा रही है। श्रेणिक राजा नवकारसी तप भी न कर सका था किन्तु यह शिक्षा सुन हृदय मे धारण करके तीर्थङ्कर गोत्र बाध सका था। आप लोग भी श्रेणिक के समान गृहस्थ हो, अतः इस शिक्षा की जरूरत है।

प्रयोजन बता दिया गया है। अब इस अध्ययन के अधिकारी का विचार करना है। कौन २ व्यक्ति इस अध्ययन की शिक्षा सुनने या ग्रहण करने के पात्र हैं ? जिस प्रकार सूर्य सबके लिये है, सब उसका प्रकाश ग्रहण कर सकते हैं। किसी के लिये भी प्रकाश ग्रहण की मनाही नही है। उसी प्रकार यह अध्ययन सबके लिये है। इतना होने पर भी सूर्य का प्रकाश वही देख सकता है, जिसके आंखें हों और वे खुली हों तथा विकार-रहित हों। जिसकी आखों मे उल्लू की तरह किसी प्रकार का विकार हो, वह सूर्य का प्रकाश ग्रहण नही कर सकता। इस अध्ययन की शिक्षा का अधिकारी भी वही है, जिसके हृदय-चक्षु खुले हुए हैं। किन्ही लोगों के हृदय-चक्षु खुले हुए होते हैं और किन्ही के अज्ञान रूपी आवरण से ढके हुए होते हैं। जिनके

गायों को देखने से पता लगता है कि उनके नीचे बछड़े नहीं होते। वे बच्चे कहा चले जाते हैं ? गायों के मालिक बछड़ों को जन्मते ही जगल में छोड़ आते हैं। वे सोचते हैं, यदि बछडा जिन्दा रहेगा तो दूध चूसेगा। जिस दूध के लिए ऐसे अनर्थ और पाप होते हैं, उसके पीने में तो पाप नहीं और जिसमें गायों की रक्षा, पालना, पोषण, सार-सम्भाल होती है, उसके पीने में पाप होता है, ऐसी श्रद्धा कैसे बैठ गई ? किसने ऐसा धर्म बताया, समझ मे नही आता।

शास्त्र में श्रावकों के घर पशु होने का जिक्र है। पशुओ के साथ जैन श्रावक का कैसा वर्ताव होना चाहिए, इसके लिए शास्त्र मे कहा है— श्रावक वध, बंध, छविच्छेद, अतिचार और भत्तपानी विच्छेद" इन पांच बातों से बच-कर पशुओ का पालन पोषण करे। श्रावक किसी जानवर को खसी नही करता, न कराता है। किसी जानवर को गाढे बधन से नहीं बांधता। किसी पर अधिक बोझा नहीं लादता। वह न किसी को मारता पीटता और न चारा पानी देने में भूल या देरी ही करता है। भक्त-पानी का अन्तराय भी नही करता। श्रावकों के लिए शास्त्र में यह विधान है। किन्तु आज के लोग पशुपालन का त्याग कर के इस झंझट से बच रहे हैं और साथ मे यह भी समझते हैं कि पाप से भी बच रहे हैं। वास्तव में इस पाप से नहीं बचा जा सकता। पाप से बचाव तब हो सकता है, जब मोल का दूध दही मावा आदि खाना छोड़ दिया जाय।

भगवान् नेमिनाथ जैसे समर्थ व्यक्ति धर्म के लिए पशु पक्षियों की हिंसा अपने सिर लेकर विवाह करना तक छोड़ देते हैं तो क्या आप दूध दही के लिए मारे जाने वाले पशुओं

हृदय-चक्षु बन्द हैं किन्तु खोलने की चाह है, वे भी इस अध्ययन के श्रवण करने के अधिकारी हैं। यह शिक्षा हृदय पट के आवरण को भी हटाती है किन्तु आवरण हटाने की इच्छा होनी चाहिये। कहने का भावार्थ यह कि जो इस शिक्षा से लाभ उठाना चाहे, वही इसका अधिकारी है।

अब इस अध्ययन के सम्बन्ध के विषय मे विचार कर लें। सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं। १ उपायोपेय भाव सम्बन्ध २ गुरु-शिष्य सम्बन्ध।

पहले-गुरु शिष्य सम्बन्ध का विचार करें कि यह शास्त्र किस गुरु ने कहा है और किस शिष्य ने सुना है?

भगवान् ने फरमाया है कि मोक्ष की इच्छा मात्र होने से मोक्ष कागजो से नही मिल जाता, कोरे सूत्र बाचने से मुक्ति नही मिल सकती। सद्गुरु अथवा सदुपदेशक की आवश्यकता होती है। कुगुरु मोक्ष का नाम लेकर विपरीत मार्ग मे भी ले जा सकते हैं, अत. प्रथम यह जान लेना चाहिए कि धर्म का सच्चा उपदेशक कौन हो सकता है? शास्त्र मे कहा भी है कि—

भी लगा सकते हो । कोई आदमी जेलखाने में बन्द हो तो जेल से छूटने पर उसे कितना आनन्द होता है ? पिंजड़ों में बन्द किये हुए वे जीव तो मौत के मुख से बचे थे । उनके आनन्द का क्या कहना ? किसी मरते हुए व्यक्ति को एक पुरुष तो राज्यदान करने लगे और दूसरा जीवनदान । वह मरणासन्न व्यक्ति किस दान को पसन्द करेगा ? जीवनदान को ही वह चाहेगा । हमारे शास्त्रों में इसीलिए कहा है—

दाणाण सेट्ठ अभयप्पयाण

सब दानो में अभयदान सर्वश्रेष्ठ है । यह बात शास्त्र, कुरान, पुरान से ही सिद्ध नही है मगर स्वानुभव से भी सिद्ध है । आपसे भी यदि कोई राजा यह कहे कि मैं धन देता हूँ और दूसरा कोई कहे कि मैं जीवनदान देता हूँ तो आप जीवनदान ही पसन्द करोगे । कारण कि जीवन न रहा तो धन किस काम का ? जीवन के पीछे धन है । यह बात एक दृष्टांत से समझाता हूँ ।

एक राजा के चार रानियां थी । अपने-अपने पद के अनुसार चारो ही राजा को प्रिय थी । राजा ने सोचा कि इन चारों में कौन अधिक बुद्धिमती है, इसका निर्णय करना चाहिए और उसी पर ज्यादा प्रेम भी रखना चाहिए । यद्यपि मुझे चारों रानियां प्रिय है तथापि गुण की अवहेलना करना ठीक नहीं है । गुणानुसार कद्र होना ही चाहिए । गुणों की तरह ज्ञानियों का खिचाव होता है । यह स्वभाविक बात है, अतः सवसे बुद्धिमती कौन है, इसका निर्णय करना चाहिए ।

धर्म का उपदेश कर सकते हैं। पहले यह देखना जरूरी है कि अमुक ग्रन्थ या पुस्तक का रचयिता कौन है? ग्रन्थ-कार की प्रामाणिकता पर ग्रंथ की प्रामाणिकता है। आज कल के बहुत से अधकचरे विद्वान् कहते हैं कि ग्रंथकार के व्यक्तिगत जीवन से तुम्हे क्या मतलब है? तुम्हे तो वह जो शिक्षा देता है, उसे देखो कि वह ठीक है या नही। किन्तु ऐसा कहने वाले व्यक्ति भ्रम मे हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि धर्म का उपदेशक वही हो सकता है, जो अपनी आत्मा को गुप्त रखता हो, जो सयमरूपी ढाल मे इन्द्रियो को उसी प्रकार काबू मे रखता हो, जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को ढाल मे रखता है। इन्द्रियदमन करने वाला ही सच्चा उपदेशक या लेखक हो सकता है।

किसने इन्द्रियदमन कर लिया है और किसने नहीं किया है, इसकी पहचान यह है कि जिसकी आंखों में विकार न हो, शारीरिक चेष्टाए शान्त और पापशून्य हो। इन्द्रिय-दमन का अर्थ आख, कान आदि इन्द्रियों का नाश कर देना नहीं है किन्तु उनके पीछे रही हुई पाप-भावना को मिटा देना है। आंख से धर्मात्मा भी देखता है और पापी भी। किन्तु दोनों की दृष्टि में बड़ा अन्तर होता है। धर्मात्मा पुरुष किसी स्त्री को देख कर उसके सुधार का उपाय सोचेगा और पापी पुरुष उसी स्त्री को देख कर अपनी वासना-पूर्ति का विचार करेगा। जिस प्रकार घोड़े को शिक्षा देकर मन मुताविक चलाया जाता है, उसी प्रकार जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को मन माफिक चला सकता है, उनका गुलाम नहीं किन्तु मालिक बन सकता है, वही इन्द्रियदमन करने वाला कहा जाता है। घोड़े का मालिक लगाम के जरिये घोड़े

मोंहरों का क्या उपयोग है जब कि मैं खूद ही न रहूँगा ? दूसरे दिन दूसरी रानी ने भी उसे एक दिन अपने-यहाँ रख कर दस हजार मोहरे भेट दी । तीसरी रानी ने एक लाख मोहरे दी । इस प्रकार उसके पास तीसरे दिन एक लाख ग्यारह हजार दीनारें थी किन्तु उसका दिल शूली की सजा के स्मरण मात्र से बडा दुःखी था । चौथी रानी ने विचार किया कि मुझे भी इस बेचारे के दुःख मे कुछ हिस्सा बटाना चाहिए ।

मृत्युघण्ट बज रहा हो, उस समय यदि कोई मुझे कितना भी धन दौलत दे तो वह मेरे लिए किस काम का हो सकता है, यह सोचकर रानी ने उसकी शूली माफ कराने का निर्णय किया । राजा की इजाजत लेकर रानी ने उस सजायाफ्ता व्यक्ति को अपने पास बुलाया । बुलाकर उसे पूछा कि जैसे अन्य रानियो ने तुझे एक एक दिन रखकर मोहरे भेट दी हैं, वैसे मैं भी एक दिन रखकर तुझे दस लाख मोहरें दे दूं अथवा तेरी यह सजा माफ करवा दू ? हाथ जोडकर चोर कहने लगा, भगवति ! मोहरे लेकर मैं क्या करूं ? यदि आप मेरी सजा माफ करा दे तो ये एक लाख ग्यारह हजार मोहरे भी आपको देने के लिए तैयार हूँ । मुझे जीवनदान चाहिए, धन नही चाहिए । उसकी बातें सुनकर रानी ने निश्चय कर लिया कि यह आदमी मोहरों की अपेक्षा जीवन को बहुमूल्य समझता है ।

आज आप लोग दमडी के लिए जीवन नष्ट कर रहे हो । एक भव का जीवन ही नही किन्तु अनेक भवों के जीवन को बिगाड़ रहे हो । आप अपने कामो की तरफ

को कुमार्ग में नही जाने देता। उसी प्रकार इन्द्रिय–दमन करने वाला इन्द्रियों को विषय विकार की तरफ नही जाने देता। भगवद् भजन करने मे उनका उपयोग करता है। यही इन्द्रिय–दमन का अर्थ है।

धर्मोपदेशक हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पांच पापो से रहित होना चाहिए। जो सब स्त्रियो को मां बहिन के समान समझता हो और धर्मोपकरण के सिवाय फूटी कोडी भी अपने पास न रखता हो अर्थात् जो कंचन और कामिनी का त्यागी हो, वही धर्मोपदेशक हो सकता है और वही प्रीतिपूर्ण, शुद्ध और अनुपम धर्म का उपदेश दे सकता है।

मैंने हिन्दू धर्म के विषय में गांधीजी का लिखा एक लेख देखा है। गांधीजी ने उस समय तक जैन शास्त्र देखे थे या नहीं, यह मैं नही कह सकता। किन्तु जो सच्ची बात होगी, वह शास्त्र में अवश्य निकल आयगी। गांधीजी ने उस लेख मे यह बताया था कि हिन्दू–धर्म का कौन उपदेश कर सकता है ? कोई पण्डित या शकराचार्य ही इस धर्म का कथन कर सकता है, यह बात नही है। किन्तु जो पूर्ण अहिंसक, सत्यवादी और ब्रह्मचारी हो वही हिन्दू धर्म को कहने का अधिकारी हो सकता है। गाधीजी के लेख

झगड़ा हो जायगा। वह चोर जीवित ही है। उसे बुलाकर पूछ लिया जाय। राजा ने रानियों से कहा कि मेरी अपेक्षा इस विषय में वह चोर अच्छा न्याय दे सकेगा क्योंकि वह भुक्तभोगी है और उसकी आत्मा जानती है कि किसने उस पर अधिक उपकार किया है। राजा ने चोर को बुलवा लिया और चारों रानियो का पक्ष-समर्थन उसके सामने रख दिया, "हे चोर! ईमानदारी से कहना कि इन चारों रानियों ने तेरे पर जो-जो उपकार किये हैं, उनमें सबसे अधिक उपकार किसका और कौनसा है? झूठ मत बोलना।" चोर ने कहा, 'राजन्! उपकार तो इन तीनों रानियों ने भी किया है जिसे मैं जीवन भर नहीं भूल सकता किन्तु चौथी रानी के द्वारा किया गया उपकार सबसे महान् है। इसने मुझे जीवन-दान दिया है। इसके उपकार का बदला मैं अनेक जन्मो मे भी नही चुका सकता। यह तो साक्षात् भगवती है। दया की अवतार है।' राजा ने कहा, तू पक्षपात से तो नहीं कह रहा है? इसने कुछ भी नही दिया, फिर भी इसका सबसे अधिक उपकार बता रहा है। चोर ने कहा—महाराज, मैं ठीक कह रहा हूँ। मेरे कथन में पक्षपात नही है किन्तु निरी सच्चाई है। इस चौथी रानी ने मुझे कुछ नही दिया है मगर फिर भी सब कुछ दे डाला है। इसने जो दिया है, वह मिले बिना जो कुछ इन तीनों ने दिया है, वह कैसे सार्थक हो सकता था? दूसरी बात-इनकी दी हुई मोहरें पास होने पर भी मुझे यह महान् भय सताता रहा कि प्रातःकाल शूली पर चढ़ना पड़ेगा और जीवन से हाथ धोने होंगे। इस चतुर्थ महारानी ने मेरा सारा भय मिटा दिया और मुझे निर्भय बना दिया है। सब कुछ आत्मा के पीछे प्रिय लगता है। आत्मा शरीर से अलग हो जाय तो सम्पत्ति किस काम की रहे?

ाना उपेय है । इस अध्ययन का उपायोपेय सम्बन्ध है
प्राप्ति और इसके द्वारा मुक्ति । मुक्ति उपेय है और
प्राप्ति उपाय है ।

संसार में उपाय मिलना ही कठिन है । यदि उपाय
। जाय और वह किया जाय तो रोग मिट सकता है ।
टर और दवा दोनो का योग होने पर बीमारी चली
ी है । किसी बाई के पास रोटी बनाने का सामान
ृद न हो तो वह रोटी कैसे बना सकती है ? यदि रोटी
ने की सब सामग्री तैयार हो तो रोटी बनाने मे कोई
ठनाई नही हो सकती ।

रोटी बनाने की सब सामग्री तैयार रखी हो परन्तु
कर्त्ता रोटी बनाने वाला किसी प्रकार का प्रयत्न न
तो रोटी कैसे बन सकती है ? आटा और पानी अपने
नही मिल सकते और न रोटी स्वयं पक सकती है ।
ी के उद्योग के किये बगैर सब साधन या उपाय किस
र के ? आप अपने लिए विचार करिये कि आपको क्या
ना चाहिए ? गफलत की नीद छोड कर जागृत हो
ये जिससे धर्मकरणी के लिए मिले हुए साधन या
य व्यर्थ न हो जायं । आपको आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल और
ष्य जन्म मिले हैं । यह क्या कम सामग्री है ? आपकी उम्र
पक चुकी है । आप तत्वज्ञान समझ सकते हो । बहुत
गोग तो कच्ची उम्र मे ही चल बसते हैं । यदि आप
बचपन मे ही चल बसते तो आपको कौन उपदेश देने
ा ? बालक, रोगी और अशक्त धर्म के अधिकारी नहीं
। जाते । उनको कोई धर्म का उपदेश नही करता ।

ही लिया । अपनी आत्मा को अभयदान देने के लिए भगवान् का यह दूसरा कदम था । पहला कदम जीवों को छुड़ाना था। जब कि विवाह दुःख का मूल है, विवाह करके आत्मा को भय में डालना भगवान् से उचित नही समझा । मुकुट के सिवाय सब आभूषण सारथी को दे दिये और स्वयं वापस लौट गये । कहावत है—

वणिकतुष्ट देत हस्ततालो ।

बनिया प्रसन्न हो जाय तो एक दो और जमा दे मगर कुछ देने में बहुत संकोच होता है । भगवान् बनिये नही थे जो ऐसा करते । उन्होने मुकुट के सिवाय सब कुछ सारथी को दे डाला । श्री कृष्ण के भण्डार के आभूषण कितने बहुमूल्य होगें, जरा ख्याल करियेगा ।

राजेमती इनके साथ विवाह करने की इच्छा रखती थी । अतः इनके लौट जाने से उसकी क्या दशा हुई होगी ? उसने सोचा कि भगवान् मुझे परमार्थ का मार्ग दिखाने आये थे । वे मेरे मोहनगारे हैं । आप लोग केवल गीत गाकर मोहनगारो कहते हैं मगर राजेमती ने सच्चा मोहनगारा बनाया था । कोरे गीत गाने से कुछ नहीं होता । गीत दो तरह से गाये जाते हैं । विवाह आदि प्रसंग पर वर की माता भी गीत गाती है और पड़ौसी स्त्रियाँ भी । इन दोनों गीत गानेवालियो में कोई अन्तर है या नही ? पड़ौसी स्त्रियाँ गीत गाकर लेती हैं । माता गीत गाकर देती है । यदि माँ भी गीत गाकर लेने लगे तो वह माता न रहेगी, पड़ौसिन बन जायगी । उसका माता का अधिकारी न रहेगा । आप भी परमात्मा के गीत गायें तो अधिकारी बनकर गाइये ।

प्रत. ज्ञानीजन कहते हैं कि उठ जाग ! कब तक सोता रहेगा ?

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥

अर्थात्—हे मनुष्यो ! उठो जागो और श्रेष्ठ मनुष्यों के पास जा कर ज्ञान प्राप्त कर लो। कारण कि ज्ञानीजन कहते हैं कि उस्तरे की धार पर चलना जितना कठिन है, उतना ही इस विकट मार्ग (धर्म मार्ग) पर चलना कठिन है।

जिस प्रकार प्रात काल माता अपने पुत्र से कहती है कि ऐ पुत्र ! उठ जाग, खडा होजा, इतना दिन निकल आया है, कब तक सोता पडा रहेगा ? उसी प्रकार ज्ञानी जन भी माता के प्रेम के समान प्रेम से सब जीवो पर दया लाकर कहते हैं कि ऐ मनुष्यो ! किस गफलत में पड़े हुए हो ? उठो जागो । भाव–निद्रा का त्याग करो। विषय कषायादि विकारों को छोड कर आत्मकल्याण के मार्ग मे लग जाओ वैराग्य शतक मे ज्ञानी सोते हुए प्राणियों को जगाते हुए कहते हैं—

मा सुबह, जग्गियव्व, पल्लाइयव्वम्मि किस्स विस्समिह ।

दिया, वह सुनिये । आजकल विधवा-विवाह की एक लहर चल पड़ी है । विधवाएं तो इस विषय में कुछ नहीं कहती, केवल नवयुवक लोग उनके विवाह कर लेने की बातें और दलीलें दिया करते हैं । जरा विचारने की बात है कि क्या विधवा-विवाह होने से ही सुधार हो जायगा ? जो लोग दूसरो का सुधार करना चहते हैं, वे पहले अपना सुधार करले । पहले खुद का रहन-सहन देखना चाहिए कि वह कैसा है और उसमे सुधार की क्या गुंजाइश है ?

राजेमती की सखी ने उसे दूसरा विवाह कर लेने की बात कही थी मगर उसकी लगन कैसी है, यह देखिये । सखी से कहा— हे सखी, तू चुप रह । ऐसा मत कह । वह भगवान् काला नहीं है किन्तु आकाश के समान श्याम वर्ण होने पर भी अनन्त है । ऊपर से चमड़ी चाहे सांवली हो मगर उसके भाव इतने निर्मल और उज्ज्वल हैं कि अन्यत्र कहीं देखने को नही मिल सकते । उनके विषय में ऐसी बेहूदा बाते मैं नही सुन सकती । उनके चरित्र की तरफ जरा नजर कर । वे मुझे छोड़ कर किसी अन्य स्त्री से विवाह करने के लिए नहीं गये हैं किन्तु दीन हीन पशुओं पर करुणा भाव लाकर, उन्हे बन्धनों से छुड़ाकर यादवों में करुणा बुद्धि जगाकर करुणासागर बनने के लिए गये हैं ।

राजेमती की बात सुनकर उसकी सखी दंग रह गई । कहने लगी- मैंने तो तुम्हे अच्छे लगने के लिए ही उक्त शब्द कहे थे । आज भी लोग दूसरों को अच्छा लगने के लिए सत्य की घात कर देते हैं । किन्तु ज्ञानीजन दूसरों को अच्छा लगने के लिए भी सत्य का खून नही करते । वे

दो मित्र जंगल मे जा रहे थे। उन में से एक थक
या। थकने के साथ ही उसे कुछ आधार मिल गया।
ास ही अच्छे घने वृक्ष हैं। सुन्दर नदी बह रही है, सपाट
ट्टान सामने है और हवा भी शीतल मन्द और सुगन्ध
क्त चल रही है। यह सब अनुकूल सामग्री देख कर थका
ुआ मित्र सो जाने के लिए ललचाया। वह मन मे मन-
ूबे बाधने लगा कि यहाँ बैठकर शीतल वायु का सेवन करना
ाहिए। सुन्दर फल खाना और पुष्पों की सुगन्ध लेना
ाहिए। नदी की कलकल आवाज सुनते हुए निद्रा लेकर
कृति के सुख का अनुभव करना चाहिए।

दूसरा मित्र प्रकृति-ज्ञान मे निपुण था। वह जानता
ा कि ये फूल कैसे हैं, यह हवा कैसी है तथा नदी की
ह कल-कलाट क्या शिक्षा दे रही है? यह स्थान कितना
पद्रवयुक्त है, यह भी वह जानता था। उस ज्ञानी मित्र ने
पने भूले हुए दोस्त से कहा कि हे प्रिय मित्र! यह स्थान
ोने के लिए उपयुक्त नही है। जल्दी उठ खड़ा हो और
ीघ्र ही यहा से भाग चल। एक क्षण मात्र का भी
वलम्ब मत कर। यहा तीन जने पीछे पड़े हुए हैं। जिन
ल-फूलो को देख कर तेरा जी ललचाया है, वे फल-फूल
वषयुक्त हैं। यहां की हवा भी विषैली है। जो वातावरण
ुझे अभी आकर्षित कर रहा है, वही थोड़ी देर में तुझे
ववश बना देगा और तेरा चलना-फिरना भी बंद हो
ायगा। यह नदी भी शिक्षा दे रही है कि जिस प्रकार
ल-कल करता हुआ मेरा पानी प्रतिक्षण बहता चला जा
हा है, उसी प्रकार तेरी आयु भी क्षण-क्षण घटती जा
ही है।

विष। मैं दिल से उनकी पत्नी बन चुकी हूं। भले ही ऊपर से विवाह संस्कार नही हुआ है। मैं समीप से सायुज्य मे पहुंच चुकी हूं। अतः अब उनका काम, उनका धर्म और उनका मार्ग मेरा काम, मेरा धर्म और मेरा मार्ग होगा। जिस प्रकार लवण की पुतली समुद्र में स्नान करने जाती है और उसी में समा जाती है, उसी प्रकार मैं भी भगवान् में समा चुकी हूं। पहले मैं पति शब्द का अर्थ कुछ और समझती थी किन्तु अब जान गई हूं कि "पुनातीति पतिः" अर्थात् जो पवित्र बनाये वह पति है। भगवान् ने मुझे पावन बना दिया है। विवाह करने पर एक को सम्मान देना पड़ता है और अन्यों की उपेक्षा करनी पड़ती है। ऐसा न हो तो वह विवाह ही नही है। मैं भी भगवान् को सम्मान देती हूं जिन्होने जगत् की सब स्त्रियों को माता और बहिन बना लिया है। मेरी भगवान् से जो लगन लगी है, वह लगी ही रहेगी। वह लगन अब नही टूट सकती। चाहे मेरे माता-पिता मुझे पहाड़ से गिरा दे, विषपान करा दें अथवा अन्य कुछ कर दे किन्तु भगवान् के साथ जो लगन लगी है, वह नहीं बदल सकती।

विवाह आप लोगों का भी हुआ है। जिसके साथ विवाह हुआ है, उसके साथ ऐसी लगन लगी है या नहीं ? विवाह करके स्त्री किसी परपुरुष पर नजर न डाले और पुरुष परस्त्री पर, यही सबक भगवान् नेमिनाथ और राजेमती के चरित्र से लेना चाहिए। तभी आप भगवान् के श्रावक कहला सकते हैं। ऐसा हो तभी आनन्द है।

राजेमती दीक्षा लेकर भगवान् से ५४ दिन पहले मुक्ति

क्या सोवे उठ जाग बाउरे ।
अंजलि जल ज्यों आयु घटत है देत पहरिया घरिय घाउ रे ॥क्या०॥
इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र मुनि चल कौन राजा पतिसाह राउ रे ।
भमत भमत भव जलधि पालते भगवन्त भक्ति सुभाउ नाउ रे ॥क्या०॥
क्या विलम्ब अब करे बाउरे तर भव जलनिधि पार पाउ रे ।
आनन्दघन चेतन मय मूरति शुद्ध निरञ्जन देव ध्याउ रे ॥क्या०॥

शास्त्रकार, ग्रन्थकार, कवि और महात्मा सब का कथन यही है कि हे जीवत्माओ ! उठो । जागो । गफलत की नींद मत सोओ ।

कोई भाई कहेगा कि क्या आप हमको साधु बनाना चाहते हैं ? मैं पूछता हूँ कि क्या साधुपन बुरी चीज है ? यदि साधुपन बुरी वस्तु होता तो आप साधुओं का व्याख्यान ही कैसे सुनते ? साधुता शक्ति होने पर ही ग्रहण की जा सकती है । शक्ति न हो तो कोई साधुत्व स्वीकार करने की बात नहीं करता । आपको साधुत्व ग्रहण करने के सयोग मिले हुए हैं । अत. जागृत हो जाइये ।

भगवन्त भक्ति स्वभाव नाउ रे ।

भगवान् की भक्ति रूप नौका मिली हुई है । उस

८ : आत्म-विभ्रम

"जीव रे तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द······"

यह तेइसवे तीर्थंकर भगवान् श्री पार्श्वनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना मे यह बात बताई गई है कि आत्मा अपना निज स्वरूप किस प्रकार भूल गया है और पुन: उसे कैसे जान सकता है ? इस पर यह प्रश्न उठता है, जब कि आत्मा चिदानद स्वरूप है तब अपने रूप को क्यो भूल गया । पुन स्वरूप का भान किस प्रकार हो सकता है ? यह प्रश्न बड़ा कठिन जान पडता है किन्तु हृदय के कपाट खोलकर विचार करने से सरल बन जाता है।

आत्मा भ्रम में पडा हुआ है, यह बात सत्य है मगर उस भ्रम को वह स्वय ही मिटा सकता है । यदि आत्मा उद्योग करे तो भ्रम मिटाकर अपने स्वरूप को आसानी से जान सकता है । आत्मा भ्रम मे किस प्रकार पडा हुआ है, इसके लिए इस प्रार्थना मे कहा गया है—

सर्प अन्धेरे रासडी रे, सूने घर बेताल ।
त्यो मूरख आतम विषे, मान्यो जग भ्रम जाल ॥

अन्धेरे मे पडे हुए रस्से के टुकड़े को देखकर साप का

उसे क्या कहेंगे ? आप कहेगे कि वह बड़ा अभागा था जो ऐसे सुसंयोग का लाभ न ले सका। आपके समक्ष भी भगवान् नाम रूपी नौका खड़ी है। सद्गुरु आपको समझा रहे हैं कि इस नौका पर सवार हो कर अनादिकालीन दुःख दर्द को मिटा लो। अधिक न कर सको तो कम से कम इस नौका पर सवार हो जाइये।

अभी मुनि श्रीमलजी ने आपको सुनाया है कि एक व्यक्ति साधु के स्थान पर आकर भी बुरे कर्म बांध सकता है और दूसरा वेश्या के भवन पर जाकर भी कर्मों की निर्जरा कर सकता है।। बुरी भली भावनाओं की अपेक्षा से यह कथन ठीक है। फिर भी यह मत समझ लेना कि साधु का स्थान बुरा है और वेश्या का अच्छा। वेश्या के र जाकर कोई विरला व्यक्ति ही बच सकता है। अतः स्थान की दृष्टि से वेश्या का स्थान बुरा और साधु का स्थान अच्छा है। लेकिन जो स्थान अच्छा है, उस साधु स्थान पर जाकर यदि कोई व्यक्ति बुरे विचार करे अथवा सरों की निन्दा करे तो यह कितनी बुरी बात है। कदाचत् कोई साधु स्थान पर रहे, उतनी देर तक अच्छे विचार खे और वहा से अलग होते ही बुरे बिचार करने लग ाय, सुनी या सीखी हुई शिक्षा को भूल जाय तो भी कोई ाभ नही गिना जा सकता। आप कहेंगे कि यह हमारी मजोरी है कि हम आपकी दी हुई शिक्षाएं शीघ्र भूल जाते । मैं कहता हूं यह केवल आपकी ही कमजोरी नही है न्तु मेरा भी कच्चापन शामिल है। मेरी दी हुई शिक्षा । आप लोग याद नही रख सकते, इसमे मैं भी अपनी मजोरी समझता हूं। मैं मेरी कमजोरी दूर करने का

कर हंसने लगे और एक दूसरे को कहने लगे कि किसने इसे साप बताया? यह तो छत मे पड़ी हुई दरार है।

इस प्रकार उस दरार (लम्बा छेद) के विषय मे जो भ्रम पैदा हुआ था, वह प्रकाश के लाने से दूर हो गया। यदि प्रकाश न लाया जाता तो वह भ्रम दूर नही होता। जिस प्रकार साप के विषय मे झूठा ज्ञान हो गया था, भ्रम हो गया था, इसी प्रकार ससार के विषय में भ्रम फैल रहा है। हमारे भ्रम से न तो आत्मा जड हो सकता है और न जड पदार्थ चैतन्य। लेकिन आत्मा भ्रम से गडबड मे पडा हुआ है और इसी कारण जन्म-मरण के चक्कर मे फसा हुआ है।

मैंने श्री शकराचार्य कृत वेदान्त भाष्य देखा है। उसमें मुझे जैन तत्व का ही प्रतिपादन मालूम पडा। मैं यह देख कर इस निर्णय पर पहुचा हूँ कि जैन दर्शन के गहरे अध्ययन की सहायता के बिना वस्तु का ठीक प्रतिपादन हो ही नही सकता। यदि कोई शान्ति से मेरे पास बैठ कर यह बात समझना चाहे कि किस प्रकार वेदान्त भाष्य मे जैन दर्शन का समावेश है, तो मैं बडी खुशी से समझा सकता हूँ।

वेदान्ती कहते हैं कि– 'एको ब्रह्म द्वितोयो नास्ति' अर्थात् एक ब्रह्म ही है दूसरा कुछ भी नही है। किन्तु भाष्य में कहा है कि–

युष्मदस्मत्प्रत्यय गोचरयो विषय विषयिणो।
तम प्रकाश द्विरुद्धस्वभावयो ॥ शाकर भाष्य ॥

प्रयत्न करूंगा। परन्तु उपदेष्टा तो निमित्त कारण है। उपादान कारण आपका आत्मा है। यदि उपादान ही अच्छा न हो तो निमित्त क्या कर सकता है? निमित्त के साथ उपादान शुद्ध होना चाहिए। किसी घडी को जब तक चाबी दी जाती रहे, तब तक वह चलती रहे और चाबी देना बंद करते ही यदि बंद हो जाय तो आप उस घडी को कैसी कहेंगे? यही कहेंगे कि वह घडी खोटी है। इसी प्रकार मैं जब तक उपदेश देता रहूँ तब तक आप स्मरण करते रहो और उपदेश सुन कर घर पहुंचते ही यदि उसे भूल जाओ तो यह सच्चापन नही गिना जायगा। इस बात पर ध्यान दीजिए और गफलत को छोडिये।

आपके सामने भगवद् भक्ति रूपी नाव खडी है। आप यदि उस पर बैठ गये, तो क्या कमी हो जायगी? तुलसीदासजी ने कहा है—

> जगनभ वाटिका रही है फली फूली रे।
> धुआ के से धौरहर देखिहू न भूली रे॥

संसार की बाडी जैसे आसमान मे तारे छिटक रहे हों वैसे फली फूली हुई है। मगर यह बाडी स्थायी नहीं है। अतः

हुई उसी प्रकार मैं दुबला हूँ, मैं लगडा लूला हूँ आ
कल्पनाएँ की जाती हैं। विचार करने पर मालूम
आत्मा न दुवला है और न लंगडा-लूला।
लंगडा लूला शरीर है मगर भ्रमवश शरीर के धर्म
में मानकर मनुष्य भयभीत या दु खी होता है। आत
शरीर के गुण स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं। अज्ञानवश जी
को एक मानता है और अनेक प्रकार का जाल रचत
इस भ्रम को मिटाने के लिए तथा काल्पनिक जगत्
से वचने के लिए प्रार्थना में कहा गया है "जीव रे तू
जिनेश्वर वंद"। भगवद्भक्ति से सब प्रकार के भ्रम
जाते हैं। भ्रम मिटने पर दु.ख कभी नही हो सकता

इसी वात को जैन सिद्धान्त के अनुसार देखें
यह संसार भ्रम-कल्पना से ही बना हुआ है अथवा
विक है ? शास्त्र कहते है, व्यवहार दृष्टि से जगत् वास्त
है और निश्चय दृष्टि से काल्पनिक। इस विषय का वि
खुलासा उत्तराध्ययन सूत्र के वीसवें अध्ययन मे किया
है।

महानिर्ग्रन्थ अध्ययन में नाथ-अनाथ की व्याख्या
गई है और वताया गया है कि जीव भ्रमवश अपने
अनाथ मानता है और अभिमान से नाथ समझता है। वास्तव
वह न नाथ है और न अनाथ है। नाथ अनाथ का सच्चा स्वरू
वताकर राजा श्रेणिक का भ्रम मिटाया गया है। इसी क
समझकर किसी वात का त्याग न करने पर भी केवल स
समझ पैदा हो जाने के कारण राजा श्रेणिक ने तीर्थंकर
गौत्र वांध लिया था। महानिर्ग्रन्थ और श्रेणिक का संवाद

क नहीं लेते बल्कि धर्म और परमात्मा का 'बायकाट' करते , वे लोग सुखी देखे जाते हैं। इस सवाल का जवाब यह कि केवल परमात्मा का नाम लेना ही सुखी बनने का ारण नही है। किन्तु नामस्मरण के साथ परमात्मा के ताये हुए नियमो का पालन करना भी जरूरी है। कोई कट रूप में परमात्मा का नाम न लेता हो किन्तु उसके ताये नियमों का पालन करता हो तो वह सुखी होगा और ोई नियमों का पालन न करे और खाली नाम-रटन्त ारता रहे तो उससे दुःख दूर नही हो सकते। जो प्रकट ्प से नाम नही लेता किन्तु नियम पालन करता है, वह ुख के साधन जुटाता है। अतः यह कहना कि परमात्मा ा नाम लेने से या भजन करने से कोई दुःखी है, कतई लत धारणा है। भजन के साथ नियम आवश्यक है। ्क आदमी ने गाड़ी में बैठे हुए एक पहलवान को देखा। ख कर उसने यह धारणा बाध ली कि गाड़ी में बैठने से ादमी पहलवान हो जाता है। उसे इस बात का भान न ा कि पहलवान तो विशेष प्रकार की कसरत करने से ानता है। इसी प्रकार नियम पालने वाला प्रकट में नाम ही लेता अतः यह कह डालना कि नाम न लेने से सुखी , भ्रमपूर्ण विचार है। परमात्मा का भजन तो करना ागर उसके बताये नियम न पालना, कैसा काम है ? इस ात को एक दृष्टान्त से समझाता हूँ।

एक सेठ के दो स्त्रियां थी। बड़ी स्त्री गादी लगा ्र हाथ मे माला लेकर अपने पति का नाम जपती रहती ी। दिन भर मोतीलालजी मोतीलालजी की रटन्त लगाती ्हती और घर का कोई काम न करती थी। किन्तु इसके

जिसे जो वस्तु अच्छी लगी, वह निकालने लगा। श्रेणिक ने घर मे से दुन्दुभी निकाली। दुन्दुभी को निकालते देख कर उसके सब भाई हसने लगे और कहने लगे कि यह कैसा आदमी है जो ऐसे अवसर पर ऐसी वस्तु बाहर निकाल रहा है ? नगारे के सिवा इसे कोई अच्छी वस्तु घर में नही दिखाई दी, जो इसे निकालना पसन्द किया है। अब यह नगारा बजाया करेगा। मालूम होता है, यह ढोली है। खजाने से रत्नादि न निकाल कर इसने यह दुन्दुभी निकाली है!

ऊपर की नजर से श्रेणिक का यह काम बडा हल्का मालूम पडता था मगर उसके मर्म को कौन जाने ? राजा प्रसन्नचन्द्र इसका मर्म समझते थे। समझते और जानते हुए भी उस समय प्रसन्नचन्द्र ने श्रेणिक की प्रशसा करना उचित नही समझा, कारण निन्यानवे भाई एक तरफ थे और अकेला श्रेणिक एक तरफ। क्लेश हो जाने की संभावना थी। प्रसन्नचन्द्र ने पुत्रो से पूछा कि क्या बात है ? सबने कहा कि हमने अमुक-अमुक चीज निकाली है पर पिताजी हम सब बडे हैरान हैं कि आप के बुद्धिमान पुत्र श्रेणिक ने नगारा निकाला है। इससे बढकर कोई बहुमूल्य वस्तु आपके खजाने मे इसे नही मिली। वाद्य की क्या कमी है ?, दस पांच रुपयो मे वाद्य मिल सकता है। यह निरा मूर्ख मालूम पड़ता है। प्रसन्नचन्द्र ने श्रेणिक की ओर नजर कर के कहा कि ये लोग तुम्हारे लिए क्या कह रहे हैं, सुनते हो ? श्रेणिक ने उत्तर दिया कि पिताजी ! राजाओ को रत्नों की क्या कमी है ? यह नगारा राज्यचिह्न है। यदि यह जल जाय तो राज्यचिह्न जल जाता है और यदि यह बच

विपरीत छोटी स्त्री घर का सब काम करती रहती थी। उसने अपने मन में यह नक्की किया कि पति का नाम तो मेरे हृदय मे है। चाहे मुंह से उसका उच्चारण करूं या न करूं। मुझे वे काम करते रहना चाहिये जिनसे पति देव प्रसन्न रहे। एक दिन बडी सेठानी सेठ के नाम की माला जपती हुई बैठी थी कि इतने मे कही बाहर से थके प्यासे सेठजी आ गये और उससे कहा कि प्यास लगी है, पानी का लोटा भर कर ला दे। बडी सेठानी ने उत्तर दिया कि इतनी दूर से चल कर आये हो सो तो नही थके और अब घर आकर थक गये। पानी का लोटा भी नहीं लाया जाता। मेरे नाम जपने मे क्यो बाधा पहुचाते हो। क्या आपको मालूम नही कि मैं किसका काम कर रही हूं और किसका नाम ले रही हूं? मैं आप ही का नाम ले रही हूं।

भाइयो! बताइये क्या बडी सेठानी का नाम-जपन सेठजी को पसन्द आ सकता है? सेठजी ने कहा-तेरा नाम-जपन व्यर्थ है। एक प्रकार का ढोग है। दोनो का वार्तालाप सुन कर छोटी सेठानी तुरन्त अच्छे कलश मे ठण्डा पानी भर लाई और सेठजी की सेवा मे उपस्थित किया। इन दोनो स्त्रियों मे से सेठजी का मन किसकी ओर झुकेगा?

से निकल दिया जाने पर भी राजकुमार ही रहा, ऊंचे ओहदे पर ही रहा, नीचे नही गिरा। विपत्ति मे पड जाने पर भी वह सम्पन्न ही रहा–श्रेष्ठ ही रहा, अतः श्रेणिक कहलाया।

श्रेणिक संसार की सब सम्पदाओं से युक्त था मगर उसके पास ज्ञान–सम्पदा नही थी। आप लोगों को अन्य सब सम्पदाएं प्रदान करने वाले और ज्ञान-पसन्दा प्रदान करने वाले मे बडा कौन मालूम होता है ? एक आदमी आपको बल देता है, धन देता है, सब कुछ देता है और दूसरा आपको आत्मा की पहिचान कराता है। इन दोनो में आपको कौन बडा लगता है ? जो आत्मा की पहिचान कराता है और यह श्रद्धा पैदा कर देता है कि आत्मा और शरीर, तलवार और म्यान अलग–अलग हैं, ऐसे महात्मा जगत् मे बहुत थोड़े हैं। सम्पदा देने वालो से ये महात्मा कम उपकारक नही हैं, बहुत अधिक उपकारक हैं।

यदि आप लोगो को आत्मा और शरीर का तलवार और म्यान के समान पृथक्–पृथक् भान हो जाय तो क्या चाहिए ? इस बात पर दृढ श्रद्धान हो जाये तो बेड़ा पार है। किन्तु दु ख है कि व्यवहार के समय ऐसा विश्वास कायम नही रहता। यदि कभी किसी वीरयोद्धा के पास तलवार हो और उस समय यदि शत्रु उसके सामने आ जाय तो वह वीर तलवार को सम्भालेगा या म्यान को ? यदि उसने उस समय तलवार न सम्भाल कर म्यान सम्भाला तो क्या वह वीर कहलायेगा और शत्रु से अपनी रक्षा कर सकेगा ? इसी प्रकार आप लोगों पर भी मान लो कोई आपत् आ जाय तो उस

को मालूम है कि वे किस लिए नाम लेते हैं ? वे नाम जपना और पराया माल 'अपना' करने के लिए लेते हैं । इस तरह परमात्मा का नाम लेना दिखावा है । नाम का महत्व नियम-पालन के साथ है ।

मतलब यह है कि कोई प्रकट में प्रभुनाम लेता है कोई प्रकट में नाम न लेकर नियम-पालन करता है । भक्ति नाम न लेने वाले में भी मौजूद है क्योकि वह व्य का पालन करता है । अतः ऐसे व्यक्ति को सुखी कर यह न मान बैठना चाहिए कि यह नाम न लेने खी है । आपके सामने भगवद् भक्ति की नाव खड़ी है । बैठ जाओ और भक्ति का रंग चढालो ।

ऐसा रग चढा लो दाग न लागे तेरे मन को ।

शंन चरित्र—

सच्चे भक्त कैसे होते हैं, इसका दाखला चरित्र द्वारा के सामने रखता हूं । कल कहा गया था कि सुदर्शन धन्यवाद दिया गया है । सुदर्शन को भक्ति का बाह्य- रखने के कारण धन्यवाद नही दिया गया किन्तु भक्ति ंग का पूरी तौर से पालन करने के कारण धन्यवाद गया है ।

सुदर्शन का जन्म चंपापुरी में हुआ था । चम्पापुरी ाजा दधिवाहन था । सुदर्शन के शीलपालन के साथ तथा कथा से सम्बन्ध रखने वाले पात्रों का परिचय करना श्यक है ।

आज तो भ्रम से उत्पन्न डाकिन-भूतों का भी भय होता है लेकिन कामदेव सामने खड़े हुए भूत को देखकर भी नही डरा। पिशाच बड़ा भयानक रूप धारण किये हुए था। हाथ मे तलवार लिए हुए था। टुकडे करने की बात कह रहा था। फिर भी कामदेव का एक रोम भी विचलित न हुआ, यह कितने आश्चर्य की बात है ? कदाचित् आप लोग यों दलील दे कि हम गृहस्थ हैं, अतः इतने मजबूत नही रह सकते। क्या कामदेव गृहस्थ नही थे ? वे नही डरते थे तो आप क्यों डरते हो ? यह कहो कि हमे अभी आत्मा और शरीर के तलवार-म्यान के समान पृथक् २ होने मे पूरा विश्वास नही है, कुछ सदेह है।

यह पिशाच मेरे शरीर के टुकड़े करना चाहता है किन्तु अनन्त इन्द्र भी मेरे टुकडे नही कर सकते। मैं जानता हूँ और मानता हूँ कि टुकडे शरीर के हो सकते हैं, आत्मा के नही। शरीर के टुकडे होने से आत्मा का कुछ नही बिगड़ता। शरीर तो पहले से ही टुकड़ों से जुडा हुआ है।

मैं सब सन्त और सतियों से यह बात कहना चाहता हूँ कि यदि हमारे श्रावको मे भूत-पिशाच आदि का भय रहा तो यह हमारी कमजोरी होगी। विद्यार्थी के परीक्षा मे फैल होने पर जैसे अध्यापक को शर्मिन्दा होना पड़ता है, वैसे ही श्रावक-श्राविकाओं मे भय होने पर साधुओ को शर्मिन्दा होना चाहिए। भगवान् महावीर का धर्म प्राप्त करने के बाद भय खाने की बात नही रहती।

कामदेव ने हसते हुए कहा—ले शरीर के टुकड़े कर

राजा कैसा होना चाहिए, इसका शास्त्र मे वर्णन है। जो क्षमकर और क्षेमधर हो, वही सच्चा राजा है। केवल अच्छे हाथी, घोडे की सवारी करने वाला ही राजा नही होता किन्तु जो पहले की बधी हुई मर्यादाओं का पालन करे और नवीन उत्तम मर्यादाएं बाधता हो, वह राजा है। क्षेम शब्द का अर्थ है कुशल। जो प्रजा की कुशल चाहता है, वह राजा है। ऐसा न हो कि खुद के महल उजले रखले और प्रजा के सुख दु ख का तनिक भी ख्याल न करे। वह राजा कहलाने का अधिकारी नही है। जो प्रजा मे प्रजा-हित के सुधार करता है और उसे सुखी बनाता है, वह राजा है।

राजा स्वयं क्षेम-कुशल करने वाला हो तथा पहले बधी हुई अच्छी और उपयोगी मर्यादाओ को तोडने वाला न हो। पुरानी मर्यादाओ को केवल पुरानी होने के कारण तोडना नही चाहिए। पुरानी मर्यादा के पालन के साथ ही साथ नवीन योग्य मर्यादा भी बाधना चाहिए। यह सच्चे राजा का लक्षण है। 'नवी करणी नही और पुराणी मेटनी नही' यह तो अच्छे राजा का चिह्न नहीं है।

दर्शन राजा ... क्त

दैवी प्रकृति का पहला लक्षण अभय है । जो स्वयं निर्भय होता है, वही दूसरों को अभयदान दे सकता है । भय से कापने वाला व्यक्ति दूसरों को क्या अभयदान देगा ? कामदेव के समान आत्मा और शरीर को जुदा मानने और विश्वास करने वाले ही दूसरों को निर्भय बना सकते हैं । कामदेव ने अपना अक्रोध रूप धर्म नही छोडा । अक्रोध धर्म को छोडना ऐसा समझा जैसे कोढ रोग को लेकर अपना स्वास्थ्य दान करना, अथवा चिन्तामणि रत्न देकर बदले में ककड लेना । कामदेव मे ऐसी दृढता थी लेकिन आज आप लोग दर-दर के भिखारी बन रहे हो । कहीं किसी देव को पूजते हो और कही किसी को । स्त्रियों मे यह बात विशेष रूप से पाई जाती है । यदि हम साधु लोग भी मत्र–तत्रादि का ढोंग करने लगे तो बहुत लोग हमारे पास उमड पडें किन्तु यह साधु का मार्ग नही है । हम तो भगवान् महावीर का धर्म सुनाते हैं, जिसे पसन्द पड़े, वह ले ले और जिसे पसन्द न पडे वह न ले ।

पिशाच ने मौखिक भय से कामदेव को डिगते न देख कर उसके शरीर के टुकडे २ कर डाले । कामदेव इस अवस्था मे भी यह मानता रहा कि मुझे वेदना नही हो रही है किन्तु जन्म–जन्म की वेदना जा रही है ।

ऑपरेशन करते समय शरीर मे वेदना होती है किन्तु जो लोग दृढचित्त होते हैं, वे उस समय भी प्रसन्न रहते हैं । जब डाक्टर ने मेरे हाथ का ऑपरेशन करने के लिए कहा तब मैंने अपना हाथ उसके सामने लम्बा कर दिया । उसने क्लोराफार्म सुंघाने के लिए कहा लेकिन मैंने सूघने से

ोना चाहिए इस वात का जरा विचार करिये ।

नाटक मे पुरुष स्त्री का वेष धारते हैं और स्त्री की रह नखरे दिखाने की चेष्टा करते हैं । ऐसा करने से भी २ पुरुष बहुत अंशो में अपना पुरुषत्व भी खो बैठते । नाटक मे स्त्री बने हुए पुरुष के हाव–भाव देख कर ाप लोग बड़े प्रसन्न होते हैं । जो खुद अपना पुंस्त्व भी ो चुका है, वह दूसरो को क्या शिक्षा देगा ?

आजकल लोगो को नाटक सिनेमा का रोग बहुत री तरह लगा हुआ है । घर मे चाहे फाकाकसी करना ड़े मगर सिनेमा देखने के लिए तो जरूर तैयार हो जायेगे । पये खर्च होने के उपरान्त नाटक सिनेमा देखने से क्या २ ानियां होती है, इसका जरा ख्याल करिये । जब कि लोग नावटी स्त्री पर भी इतने मुग्ध होते देखे जाते हैं, तब भया पर राजा इतना मुग्ध हो, इस मे क्या आश्चर्य की ात है ? वह तो साक्षात् स्त्री थी और बहुत रूप–सम्पन्न । आश्चर्य तो इस बात में है कि कहां तो आजकल के ोग जो बनावटी रूप मात्र देख कर मुग्ध बन जाते हैं ार कहा वह सुदर्शन, जो रूप-लावण्य–सम्पन्न अभया पटरानी र भी मुग्ध न हुआ ।

जब मैं अहमदनगर में था, तब वहां के लोग मेरे ामने आकर कहने लगे कि एक नाटक कम्पनी आई है जो हुत अच्छा नाटक करती है । देखने वालों पर अच्छा भाव पडता है । इस प्रकार उन लोगों ने मेरे सामने उस टक मंडली की बहुत प्रशंसा की । उस समय मैंने उन

देवी प्रकृति का पहला लक्षण अभय है। जो निर्भय होता है, वही दूसरो को अभयदान दे सकता है। भय से कापने वाला व्यक्ति दूसरों को क्या अभयदान देगा? कामदेव के समान आत्मा और शरीर को जुदा मानने और विश्वास करने वाले ही दूसरों को निर्भय बना सकते हैं। कामदेव ने अपना अक्रोध रूप धर्म नही छोड़ा। अक्रोध धर्म को छोडना ऐसा समझा जैसे कोढ रोग को लेकर अपना स्वास्थ्य दान करना; अथवा चिन्तामणि रत्न देकर बदले मे कंकड लेना। कामदेव मे ऐसी दृढता थी लेकिन आज आप लोग दर-दर के भिखारी बन रहे हो। कही किसी देव को पूजते हो और कही किसी को। स्त्रियों मे यह बात विशेष रूप से पाई जाती है। यदि हम साधु लोग भी मंत्र-तंत्रादि का ढोग करने लगे तो बहुत लोग हमारे पास उमड पड़ें किन्तु यह साधु का मार्ग नही है। हम तो भगवान् महावीर का धर्म सुनाते हैं, जिसे पसन्द पड़े, वह ले ले और जिसे पसन्द न पडे वह न ले।

पिशाच ने मौखिक भय से कामदेव को डिगते न देख कर उसके शरीर के टुकडे २ कर डाले। कामदेव इस अवस्था मे भी यह मानता रहा कि मुझे वेदना नहीं हो रही है किन्तु जन्म-जन्म की वेदना जा रही है।

ऑपरेशन करते समय शरीर मे वेदना होती है किन्तु जो लोग दृढचित्त होते हैं, वे उस समय भी प्रसन्न रहते हैं। जब डाक्टर ने मेरे हाथ का ऑपरेशन करने के लिए कहा तब मैंने अपना हाथ उसके सामने लम्बा कर दिया। उसने क्लोराफार्म सुंघाने के लिए कहा लेकिन मैंने सूंघने से

लोगों से यही कहा कि फिर कभी इस विषय मे समझाऊंगा ।

एक दिन मैं जंगल गया था कि दैवयोग से नाटक मडली मे पार्ट लेने वाले लोग भी उधर ही घूमते हुए जा रहे थे । वे लोग अपनी धुन मे मस्त होकर जा रहे थे । मैंने उन लोगो की चेष्टाए और आपसी बातचीत सुनी । सुन कर मैं दग रह गया । क्या ये वे ही लोग हैं, जिनकी नाटक मण्डली की इतनी प्रशसा मेरे सामने की गई थी ? उनकी बातें और चेष्टाए इतनी गंदी थी कि कुछ कहा नही जा सकता । मैंने मन मे विचार किया कि ये लोग सीता, राम या हरिश्चन्द्र का पार्ट अदा करते हैं, किन्तु क्या दर्शको पर इनके खुद के भावो–विचारो का असर न होता होगा ? क्या केवल इनके द्वारा दिखाये या कहे हुए सीता, राम या हरिश्चन्द्र के कार्यों या गुणो का ही लोगो पर असर होता है ? या नाटक दिखाने वालो के व्यक्तिगत चरित्रो का भी प्रभाव दर्शको पर पडता है ? मैं पहले व्याख्यान में कह चुका हूँ कि किसी ग्रंथ या उपदेश की प्रामाणिकता उसके कर्त्ता या उपदेशक पर अवलंबित है । फोनोग्राफ की चूडी से निकले हुए शब्दों का विशेष असर नहीं होता । असर होता है शब्दो के पीछे रही हुई चारित्रशील आत्मा का ।

कदा क

थी। वह जलतारिणी, उपद्रवादिनाशिनी विद्याएं जानता था किन्तु धर्मरूप रत्न उसके पास न था और इसी से वह अनाथ था।

आज अनाथ उसे कहा जाता है जिसका कोई रक्षक न हो, जिसे कोई खाने पीने की वस्तुए देने वाला न हो। और जिसका कोई रक्षक हो तथा खाने-पीने की वस्तुए देने वाला हो, वह सनाथ गिना जाता है। किन्तु महा निर्ग्रन्थ-अध्ययन नाथ और अनाथ की व्याख्या कुछ और प्रकार से करता है, यह बात अवसर होने पर बताई जायगी। सुदर्शन चरित्र—

> तिनपुर सेठ श्रावक दृढ धर्मी, यथा नाम जिनदास।
> अर्हद्दासी नारी खासी रूप शील गुणवान रे ॥धन० ॥५॥
> दास सुभग बालक अति सुन्दर गौएं चरावनहार।
> सेठ प्रेम से रखे नेम से करे साल सभाल रे ॥धन० ॥६॥

कथा में सुदर्शन का जो पूर्व-भव का चरित्र बताया गया है; उससे अपने चरित्र को सुधारने की शिक्षा लेनी चाहिए। सुदर्शन के परिचय के साथ उसके मां बाप का भी परिचय दिया गया सो तो अच्छी बात है मगर उसके पूर्व-भव का परिचय देना आजकल के तरुण युवको को अच्छा नही लगता। आज के बहुत से युवकों को पूर्वभव की बातो पर विश्वास नही बैठता। उन्हे विश्वास हो या न हो किन्तु यह वात निश्चित है कि पूर्वभव है, पुनर्जन्म है। शास्त्रीय पुरानो के साथ २ पुनर्भव की पुष्टि के लिए कई प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिले है। कई वच्चों को जातिस्मरण ज्ञान हुआ है और उन्होंने अपने पूर्वजन्म के हालात वताये हैं।

करते और उसे सच्चा साधु क्यों नहीं मानते ? आप कहेंगे
कि वह तो नकली साधु है उसे असली कैसे मानेंगे ? मैं कहता
हूँ कि जैसे साधु नकली है, वैसे अन्य पात्र भी नकली ही
हैं। जंगल से वापिस लौट कर व्याख्यान में मैंने लोगों से
सब कहा कि ऐसे लोगों के द्वारा दिखाए हुए खेल से आपका
कुछ कल्याण नही होने वाला है।

महारानी अभया वहुत सुन्दर थी और राजा दधिवा-
हन उस पर वहुत मुग्ध था। फिर भी सुदर्शन रानी पर
मुग्ध न हुआ। उसके जाल में न फंसा। ऐसे ही महापुरुष
की शरण लेकर भगवान् से प्रार्थना करो कि हे प्रभो ! ऐसे
चारित्रशील व्यक्ति के चारित्र का अंश हमको भी प्राप्त हो।

तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किंवा।

जो लक्ष्मीवान् की सेवा करता है क्या वह कभी
दुखा रह सकता है ? जो भगवान् की शरण जाता है, वह
भी उनके समान बन जाता है। वैसे ही शील धर्म का
पालन करने वाले सुदर्शन की शरण ग्रहण करने से शील
पालने की क्षमता अवश्य प्राप्त होगी।

यह चरित्र मनरूपी कपड़े के मैल को साफ करने का
काम भी करेगा। लोकनीति, शरीर-रक्षा और संसार
व्यवहार की बातें भी इस चरित्र में आयेंगी। आज समाज
में जो कुरीतियां घुसी हुई हैं, उनके विरूद्ध भी इस चारित्र
में कुछ कहा जायगा। अतः इस चरित्र को सावधान हो
कर सुनिये और शील धर्म को अपना कर आत्म-कल्याण
करिये।

राजकोट

८—७—३६ का व्याख्यान

सेठ उसकी चिन्ता मिटाने और प्रसन्न करने के लिए उसे बाग बगीचे में ले गये, खेल तमाशे दिखाये किन्तु कोई परिणाम न निकला। सेठानी की चिन्ता न मिटी।

बुद्धिमान लोगों का कहना है कि स्त्री को मुर्झाई हुई न रखना चाहिए। स्त्री को मुर्झाई हुई रखना, अपने अंग को ही मुर्भित रखना है। सेठ ने सेठानी को राजी रखने के अनेक प्रयत्न किए मगर सब व्यर्थ गये। अंत में सेठ ने सोचा कि दर्द कुछ और है और इलाज कुछ और हो रहा है। सेठानी से चिन्ता का कारण पूछा। सेठानी से अब न रहा गया। विचार करने लगी कि मेरे पति मेरे सुख दुःख के साथी हैं, अतः इनके सामने अपनी चिन्ता प्रकट करनी चाहिए। सेठानी ने कहा, मुझे कपड़े लत्ते और गहने आभूषण की चिन्ता नही है। जो स्त्रियां ऐसी चिन्ता करती हैं, वे जीवन का अर्थ नही समझती। मुझे तो यह चिन्ता है कि आपके जैसे योग्य पति के होते हुए भी हमारे घर में हमारा उत्तराधिकारी घर का रखवाला नहीं है। मैं अपना कर्त्तव्य पूरा न कर सकी। कुलदीपक के बिना सर्वत्र अंधेरा है।

सेठानी का कथन सुनकर सेठ विचार करने लगे कि मैं जिनभक्त हूं। संतान प्राप्ति के लिए नही करने योग्य काम मैं नही कर सकता। योग्य उपाय करना बुद्धिमानों का काम है। सेठानी से कहा—प्रिये ! हम लोग जिनेश्वर देव के भक्त हैं। पुत्र होना, न होना हमारे हाथ की बात नही हैं। यह बात भाग्य के अधीन है। ऐसी चिन्ता करना अपने नाम को लजाना है। अतः चिन्ता छोड़ कर अपनी

९ : सिद्ध साधक

" श्री मुनि सुव्रत सायबा .... ।"

यह २० वें तीर्थंकर मुनि सुव्रत स्वामी की प्रार्थना है । आत्मा को परमात्मा की प्रार्थना कैसे करना चाहिए, यह बात अनेक विधियो और अनेक शब्दो द्वारा कही हुई है । प्रभु के अनेक नाम हैं । उन नामो को लेकर भक्तो ने अनेक रीति से प्रार्थना की है । इस प्रार्थना मे कहा गया है कि आत्मा को स्वदोषदर्शी होना चाहिए । सब लोगों की यह इच्छा रहती है कि हम हमारी प्रशसा ही सुने । कोई हमारी निन्दा न करें । लेकिन ज्ञानी कहते हैं कि प्रशसा सुनने की आदत छोडकर अपने दोष देखने सुनने की आदत डालो । यह सुनने की कभी मन मे भावना न लाओ कि मेरे में क्या क्या गुण हैं ? किन्तु मेरे में क्या दोष या त्रुटिया हैं, उनको जानने-

९ : श्रेणिक को धर्म प्राप्ति

"श्री महावीर नमूं वरनाणी······।"

यह चौबीसवे तीर्थकर भगवान् महावीर स्वामी की प्रार्थना है। एक एक तार को सुलझाते सुलझाते सारा गुच्छा सुलझ जाता है और एक एक के उलझते सारी वस्तु उलझ जाती है। यह आत्मा इस ससार मे उलझ रहा है। इसको सुलझाने तथा सत्य सरल बनाने का मार्ग परमात्मा की प्रार्थना करना है। भक्तिमार्ग आत्मा की उलझन मिटा देता है।

अव हम यह देखें कि आत्मा की उलझन कौन सी है? आत्मा द्रव्य को भूल कर पर्याय की कद्र करता है, यही इस की उलझन है। आत्मा घाट तो देखाता है मगर जिस सोने का वह घाट वना है उसको नही देखता। सोने की कद्र नहीं करता, सोने के बने हुए विविध प्रकार के घाट (रचनाविशेष) की कद्र करता है। ससार व्यवहार मे भी यदि कोई सोने को न देख कर केवल घाट को ही देखे और वनावट के आधार से ही क्रय विक्रय करले तो उसका दिवाला निकल जायगा। चतुर व्यक्ति घाट की तरफ गौण

इस प्रकार की प्रार्थना वही कर सकता है, जो पाप
ो पाप मानता है, खुद को अपराधी मानकर स्वगुण-कीर्तन
ो वांछा नही रखता तथा अपनी कमजोरियां सुनने के लिए
त्सुक रहता है। जो अपने गुण सुनने के लिए लालायित रहता
, वह अभी प्रभु प्रार्थना से दूर है ।

अब शास्त्र की बात कहता हूं । कल कहा था कि
स बीसवे अध्ययन में जो कुछ कहता है, वह सब पीठिका,
स्तावना या भूमिका रूप से प्रथम गाथा में कह दिया गया
। इस गाथा का सामान्य अर्थ कर दिया गया है । अब
याकरण की दृष्टि से विशेष अर्थ तथा परमार्थ रूप अर्थ
रना बाकी है । इस गाथा मे जो शब्द प्रयुक्त किए गये हैं,
नसे किन-किन तत्वो का बोध होता है, यह टीकाकार
तलाते हैं।

मैंने पहले यह बताया था कि नवकार मंत्र के पांच
दों में दूसरा सिद्ध पद तो सिद्ध है और शेष चार पद साधक
। एक दृष्टि से यह बात ठीक है किन्तु टीकाकार दूसरी
ष्टि सामने रखकर अरिहन्त पद की गणना भी सिद्ध में
रते हैं । इस दृष्टि से दो पद सिद्ध हैं और शेष तीन साधक
। अरिहंत की गणना सिद्ध में की जाती है । उसके लिए
ास्त्रीय प्रमाण भी है । कहा है—

एव सिद्धा वदन्ति परमाणु ।

अर्थात्—सिद्ध परमाणु की इस प्रकार व्याख्या करते
। सिद्ध बोलते नही । उनके शरीर भी नही होता । वैसी
ालत मे यह मानना पड़ेगा कि यहा जो सिद्ध शब्द का प्रयोग

का ख्याल करने वाला द्रव्य की कद्र नही करके पछताता है।

आत्मा इस प्रकार की भूल न करे, अतः ज्ञानियो ने अहिसा व्रत बतलाया है। सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि व्रत इसी के लिए हैं। अहिसा व्रत मे यही बात है कि अपनी आत्मा के समान सब जीवो को मानो। 'अप्पसमं मनिज्जा छप्पि काय' छहो काया के जीवो को अपनी आत्मा के समान मानो। पर्याय के कारण भेद मत करो। जब तक अपनी आत्मा के समान सब जीवो को नही माना जाता, तब तक अहिसा व्रत का पालन नही हो सकता। जिसे पूर्ण अहिसा का पालन करना होगा, उसे पर्याय की तरफ कतई ख्याल न रख कर केवल शुद्ध चेतन रूप द्रव्य का ख्याल रखना होगा। भगवद्गीता मे भी कहा है कि—

> विद्याविनयसम्पन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
> शुनि चैव श्वपाके च, पण्डिताः समदर्शिन. ॥

पंडित अर्थात् ज्ञानी, ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल सब पर नजर रखते हैं। सब मे शुद्ध चेतन द्रव्य को देखते हैं। उनकी विविध प्रकार की शुद्ध-अशुद्ध खोलियो का ख्याल नही करते। सब जीवों की समान रूप से सेवा करते हैं। पर्याय की तरफ देखने की आदत को मिटाने से आत्मा परमात्मा बन जायगी। जो भगवान् महावीर को मानता है, उसे मनुष्य, स्त्री बालक, वृद्ध, रोगी, नीरोगी, पशु-पक्षी, सांप बिच्छु, कीड़ी, मकोड़ी आदि योनियो का ख्याल किये विना सव की समान रूप से रक्षा करनी

किया गया है वह अरिहन्त वाचक ही है। इससे स्पष्ट है कि अरिहन्त की गणना भी सिद्ध पद मे है। शेष तीन पद आचार्य, उपाध्याय और साधु तो साधु हैं ही। उनका नाम निर्देश करके नमस्कार किया गया है।

पुनः यह प्रश्न खड़ा होता है कि जब अरिहन्त को नमस्कार कर लिया गया तब आचार्य, उपाध्याय और साधु को नमस्कार करने की क्या आवश्यकता है? राजा को जब नमस्कार कर लिया गया तब परिषद् बाकी नही रह जाती। अरिहन्त राजा है। आचार्य, उपाध्याय, साधु उनकी परिषद् हैं। इन्हे अलग नमस्कार क्यो किया जाय?

प्रत्येक कार्य दो तरह से होता है। पुरुष-प्रयत्न से तथा महापुरुषो की सहायता से। इन दोनों उपायो के होने पर कार्य की सिद्धि होती है। महापुरुषों की सहायता होना बहुत आवश्यक हैं किन्तु कार्य-सिद्धि मे स्वपुरुषार्थ प्रधान है। अपना पुरुषार्थ होने पर ही महापुरुषो की सहायता मिल सकती है? और तभी वह सहायता काम आ सकती है। कहावत भी है कि—

पड जाते हैं किन्तु समझदार सूत्रधार ऐसे भ्रम मे न फंसता । सूत्रधार स्त्री–वेषधारी पुरुष को उसके मूल न से ही पुकारता है । पोसाक के कारण उसकी असलिय को नही भुलाता । इसी प्रकार ज्ञानी जन पर्याय की तर न देख कर उसके भीतर रहे हुए द्रव्य को देखते हैं । पु बदल लेने से पुस्तक नही बदलती । 'एगे आया' के सिद्धां तानुसार सब आत्माएं समान हैं । अन्तर केवल पर्यायो अ शरीरो का है । हमारी भूल का मूल कारण यही है शरीर के अनित्य होने से हम आत्मा को भी अनित्य मान लग जाते हैं। आत्मा नित्य है । शरीर अनित्य है । आत्मा को नित्य मानने पर पर्याये अपने आप जुदा मालूम होगी और अनित्य भी मालूम होगी ।

उत्तराध्ययन के बीसवे अध्ययन में यही बात बताई गई है । कल कहा था कि राजा श्रेणिक मगध देश का अधिपति था और प्रभूत रत्नो का स्वामी था । आगे कहा है कि—

पभूयरयणोराया सेणिओ मगहाहिवा ।
विहार जत्त निज्जाओ मडिकुच्छिसि चेइये ।। २ ।।
नाणा दुम लयाइण्ण नाणा पक्खि निसेविय ।
नाणा कुसुम सच्छिन्न उज्जाण नदणोवन्न ।। ३ ।।

महाराजा श्रेणिक को सब रत्न मिले है मगर एक समकित रूप रत्न नही मिला है। तत्वज्ञान नही हुआ है। वे इसकी खोज मे हैं।

गुरुषार्थ से होता है, फिर भी महान् पुरुषों की सहायता
आवश्यकता रहती है। जैसे मनुष्य लिखता खुद है मगर
या दीपक के प्रकाश के विना नही लिख सकता। लिखने
प्रकाश की सहायता लेना अनिवार्य है। मनुष्य चलता
है मगर प्रकाश की मदद जरूरी है। उसके बिना चलते
ते खड्डे में गिर सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक काम-
महापुरुषो के सहारे की जरूरत रहती है।

परमात्मा की प्रार्थना के विषय में भी यही बात है।
हृदय मे परमात्मा का ध्यान हो तो दुर्वासना उस समय
ही नही सकती। परमात्मा ध्यान और दुर्वासना का
स्पर विरोध है। एक समय मे दोनों का निर्वाह नही हो
ता। जब हृदय में दुर्वासना न रहे तब समझना चाहिए
अब उसमें ईश्वर का निवास है। यदि जानबूझ कर
य मे दुर्वासना रखे और ऊपर से परमात्मा का नाम लिया
तो यह केवल ढोंग है, दिखावा है। सिद्ध और साधक
ों की सहायता की अपेक्षा है, अतः दोनों को नमस्कार
ा गया है।

नमस्कार रूप में जो प्रथम गाथा कही गई है, उसमें
बात और समझनी है। गाथा में कहा है कि सिद्ध और
ति को नमस्कार कर के तत्व की शिक्षा दूंगा। इस कथन
ो क्रियाएं हैं। जब एक साथ दो क्रियाएं हों तब प्रथम
ा त्वा प्रत्ययान्त होती है। इस क्रिया का प्रयोग अपूर्ण काम
लिये होता है। जैसे कोई कहे कि मैं अमुक काम करके
काम करूंगा। इसमें दो क्रियाएं हैं। एक अपूर्ण और
री पूर्ण। प्राकृत गाथा मे श्री आचार्य ने दो क्रियाएं रख

लिखी जाती या न लिखी जाती, इसका भी पता क्योकि शास्त्रकार धर्ममार्ग पर आये हुए या आने वा का ही शास्त्र में जिक्र किया करते हैं । प्रसंग मे दूसरो वर्णन आये, यह दूसरी बात है। श्रेणिक को केवल समर्कि रत्न ही मिला था, श्रावकपन प्राप्त नही हुआ। फिर भी भविष्य मे पद्मनाथ नामक तीर्थंकर होगा । आप लोग क्रियाएं करते हैं किन्तु यदि दृढ श्रद्धा विश्वास के साथ कर तो मोक्ष के लिए उपयोगी होगी । बिना समकित या श्रद्ध के की हुई क्रियाएं ऐसी ही हैं, जैसे कि बिना अंक वाल बिंदिया । बिना अक वाली बिंदी किस काम की ? क्रोध मान और लोभ को हल्का बना कर आन्तरात्मा मे लाओ और धर्म-क्रियाएं करो तो आनन्द ही आनन्द है ।

श्रेणिक राजा यद्यपि धर्म क्रियाएं न कर सका मगर वह तत्व का जिज्ञासु था। उसकी रानी चेलना राजा चेडा की पुत्री थी। चेडा राजा के सात पुत्रिया थी । सातो ही सतियां हुई हैं । चेलना के रग रग में धर्म भावना भरी हुई थी । चेलना इस बात की फिक्र में रहती थी कि मेरे पति को कब और किस प्रकार समकित रत्न प्राप्त हो ? मैं कब समकित धारी धर्मात्मा राजा की रानी कहाऊं ? इधर श्रेणिक राजा यह सोचा करता था कि मेरी रानी यह धर्म का ढोग छोड़ कर कब मेरे साथ मनमाने मौज-मजा उड़ाये । दोनो की अलग अलग इच्छाए थी। कभी कभी श्रेणिक की तरफ से चेलना के धर्म की मीठी परीक्षा भी हुआ करती थी। जो धर्म पर दृढ रहता है, वह अपना सिर तक दे देता है मगर धर्म को नही छोड़ता । दोनो में धर्म सम्बन्धी चर्चा भी हुआ करती थी किन्तु वह चर्चा कभी क्लेश या मनमुटाव

कर एक बडे परमार्थ की सूचना की है। जैसे सूर्य को अंधकार के साथ किसी प्रकार का द्वेष नही है और न वह अन्धकार का नाश करने के लिये ही उदय होता है। उसका उदय होने का स्वभाव है और अन्धकार का स्वभाव प्रकाश के अभाव मे रहने का है। अतः सूर्य उदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार ज्ञानियो का अज्ञानियो या अज्ञान के साथ किसी प्रकार का द्वेष नही है। सच्चे तत्व का प्रकाशन या निरूपण करने से असत्य या अज्ञान का खण्डन अपने आप ही हो जाता है। ज्ञानी के निरूपण से अज्ञानान्धकार नष्ट होता ही है।

इस गाथा मे जो क्रियाएं हैं, उनसे भी ऐसा ही हुआ है। बौद्धो की मान्यता है कि आत्मा निरन्वय विनाशी है। किन्तु ज्ञानी कहते हैं कि यह बात सत्य नही है। आत्मा का निरन्वय नाश नही होता किन्तु सान्वय नाश होता है। पर्यायदृष्टि से आत्मा का नाश होता है, द्रव्यदृष्टि से नही। जैसे मिट्टी का घडा बनाया गया। मिट्टी का मिट्टी-रूप पर्याय नष्ट हो गया और घट पर्याय बन गया। मिट्टी का बिल्कुल नाश नहीं हुआ किन्तु रूप बदल गया है। यदि मिट्टी का निरन्वय नाश हो जाय तब तो घड़ा किसी हालत मे नहीं बनाया जा सकता। सोने के कड़े को तुडवाकर हार बनवाया गया, यहां कड़े का नाश हुआ है मगर निरन्वय नाश नही हुआ।

आवश्यकता होती है, इसका जरा विचार कीजिये। इनके साम
अप्सरा भी आ जाय तो ये विचलित नही होते। यह
तो एक बच्चा भी समझ सकता है कि जो लाखो को जीत
वाले को भी जीत लेता है, वह कितना बहादुर होगा।

श्रेणिक राजा ने सोचा कि यह ऐसे मानने वाली न
है। इसके गुरु के पास एक वेश्या को भेजूं और वह
भ्रष्ट कर दे तब यह मानेगी। चेलना यह बात समझ
कि इस वक्त धर्म की कठिन परीक्षा होने वाली है। वह
परमात्मा से प्रार्थना करने लगी कि हे प्रभो! मेरी लाज
तुम्हारे हाथ मे है। प्रार्थना करके वह ध्यान मे बैठ गई।

राजा ने वेश्या को बुला कर हुक्म दिया कि उस
साधु के स्थान पर जाकर उसे आचरण-भ्रष्ट कर आ।
तुझे मुंह मांगा इनाम दिया जायगा। वेश्या बन-ठन कर
साथ मे कामोद्दीपक सामग्री लेकर साधु के स्थान पर गई।
साधु ने स्त्री को अपने धर्मस्थान पर देख कर कहा कि
खबरदार, यहा रात के समय स्त्रिया नही आ सकती, ठहर
भी नही सकती। यह गृहस्थ का घर नही है, धर्मस्थान है।

वेश्या ने उत्तर दिया, महाराज आपकी बात वह मान
सकती है, जो आपकी भक्त हो। मैं तो किसी और ही मत-
लब से आई हूं। मैं आपको आनन्द देने आई हूं। यह कह
कर वेश्या साधु के स्थान मे घुस गई। साधु समझ गये कि
यह मुझे भ्रष्ट करने आई है। यद्यपि मैं अपने शील-धर्म
पर दृढ हूं तथापि लोकोपवाद का ख्याल रखना जरूरी है।
बाहर जाकर कही यह यों न कह दे कि मैं साधु को भ्रष्ट

की निरन्वय नाश मानने की बात खंडित हो जाती है। टीकाकार कहते हैं कि यदि आत्मा निरन्वय-नाशी हो तो गाथा में दी गई दोनो कियाएं निरर्थक हो जायगी। सिद्ध और संयति को नमस्कार करके तत्व की शिक्षा देता हूं।' इस वाक्य मे 'नमस्कार करके' तथा 'शिक्षा देता हूँ' ये दो क्रियाएं हैं। प्रथम नमस्कार किया गया और बाद में शिक्षा देने का कार्य आरम्भ किया गया। दोनों क्रियाओ का कर्ता आत्मा एक ही है। यदि आत्मा का निरन्वय एकान्त नाश माना जाय तो दोनों क्रियाओ का प्रयोग व्यर्थ हो जायगा। आत्मा क्षण-क्षरण विनष्ट होता है और वह भी सर्वथा नष्ट यदि होता है तथा उसकी पर्यायें ही नष्ट नही होती किन्तु वह खुद नष्ट हो जाता है तो वैसी हालत में नमस्कार करने वाला आत्मा नष्ट हो जाता है। फिर शिक्षा कौन देगा? अथवा यह मानना पड़ेगा कि शिक्षा देने वाला आत्मा दूसरा है क्योंकि नमस्कार करने वाला आत्मा तो क्षरणविनाशी होने के कारण उसी समय नष्ट हो गया और शिक्षा देने के लिए कायम न रहा। इस प्रकार आत्मा को निरन्वय विनाशी मानने से उपर्युक्त दोनों क्रियाएं व्यर्थ हो जाती हैं। किन्तु आत्मा बौद्धों की मान्यता मुताबिक एकान्त विनाशी नही है। आत्मा द्रव्य रूप से कायम रहता है। अतः दोनों क्रियाएं सार्थक हैं। दो क्रियाओं के प्रयोग मात्र से ही बौद्धो की क्षरण-वादिता का खण्डन हो जाता है।

आत्मा का एकान्त विनाश मानने से अनेक हानियां हैं। इस सिद्धान्त पर कोई टिक भी नही सकता। उदाहरण के लिये किसी आदमी ने दूसरे आदमी पर दावा दायर किया कि मुझे इससे अमुक रकम लेनी है, वह दिलाई जाय।

हुए वह वेश्या कह गई कि महाराज ! आप मुझ से दूसरे काम ले सकते हैं मगर ऐसे तप तेजधारी महात्मा के पास कभी मत भेजियेगा । मैं इनकी दया के प्रभाव से ही अपने प्राण बचा पाई हूँ ।

रानी ने यह बात सुन कर राजा श्रेणिक से कहा कि महाराज यह तो आप की करतूत मालूम पड़ती है । मैं तो पहले ही कह चुकी हूँ कि मेरे धर्मगुरु ऐसा कभी नही कर सकते । चलिये, उनके दर्शन करे । अन्दर सुविहित जैन वेष-धारी साधु न थे किन्तु दूसरा वेष पहिने हुए साधु थे । रानी ने कहा, मैं द्रव्य-भाव दोनो दृष्टि से जो साधु होता है, उसे सच्चा साधु मानती हूँ । ये रजोहरण मुखवस्त्रिका-धारी नही हैं, अत. मेरे धर्मगुरु नही हैं । राजा बडा लज्जित हुआ । मन मे विचार किया कि रानी ठीक कहती है । अब मुझे इस धर्म के तत्व जानने चाहिए । यही से राजा को जैन धर्म के तत्वों को जानने की रुचि जागृत हुई ।

यद्यपि राजा श्रेणिक राजमहलो में रहता था फिर भी वह जंगल की खुशनुमा हवा लेने के लिए जाया करता था । वह यह बात समझता था कि ताजा हवा के बिना ताजा जीवन नही बनता । शास्त्र मे विहार यात्रा शब्द का प्रयोग किया गया है । जैसी यात्रा होती है, वैसा ही उसका फल भी होता है । धर्म यात्रा, धन यात्रा, शरीर यात्रा आदि जुदी-जुदी यात्राओं का फल जुदा २ है । धर्म की यात्रा मे धर्म की और धन की यात्रा में धन की रक्षा की जाती है । इसी प्रकार शरीर यात्रा का अर्थ शरीर की रक्षा करना है ।

आज शरीर यात्रा के नाम से ऐसे काम किये जाते

मुदायले ने कोर्ट मे हाकिम के समक्ष यह बयान दिया कि यह दावा बिलकुल झूठा है। कारण यह है कि रुपये देने वाला मुद्दई और रुपये लेने वाला मुदायला दोनो ही कभी के नष्ट हो चुके हैं। हाकिम ने मन मे सोचा कि यह देन-दार चालाकी करके सिद्धान्त की ओट मे बचाव करना चाहता है। अत उसने उस आदमी को कैद की सजा देने की बात सुनाई। सुनकर वह रोने लगा और कहने लगा कि मैं रुपये दे दूंगा। सजा मत करिये। हाकिम ने उस आदमी से कहा कि अरे रोता क्यों है? तू तो कहता था कि आत्मा क्षण क्षण मे पूर्ण रूप से विनष्ट हो जाता है और बदल जाता है, तब सजा भुगतने वक्त भी न मालूम कितनी बार आत्मा नष्ट हो जायगा और बदल जायगा। दु:ख किस बात का करता है? मैं रुपये दिये देता हूँ मुझे सजा मत करिये। कह कर उसने उसी वक्त रुपये दे दिये और पिंड छुड़ाया। इस प्रकार वह अपने क्षणवाद के सिद्धान्त पर कायम न रह सका।

कहने का मतलब यह है कि जब भावी पर्याय का अनुभव किया जाता है, तब भूत पर्याय का अनुभव क्यो नहीं किया जाता? अवश्य किया जा सकता है। यदि ऐसा माना जाय कि जीव भावी–क्रिया का तो अनभव करता क

हुए वह वेश्या कह गई कि महाराज ! आप मुझ से दूसरे काम ले सकते है मगर ऐसे तप तेजधारी महात्मा के पास कभी मत भेजियेगा । मैं इनकी दया के प्रभाव से ही अपने प्राण बचा पाई हूँ ।

रानी ने यह बात सुन कर राजा श्रेणिक से कहा कि महाराज यह तो आप की करतूत मालूम पड़ती है । मैं तो पहले ही कह चुकी हूँ कि मेरे धर्मगुरु ऐसा कभी नही कर सकते । चलिये, उनके दर्शन करे । अन्दर सुविहित जैन वेष-धारी साधु न थे किन्तु दूसरा वेष पहिने हुए साधु थे । रानी ने कहा, मैं द्रव्य-भाव दोनो दृष्टि से जो साधु होता है, उसे सच्चा साधु मानती हूँ । ये रजोहरण मुखवस्त्रिका-धारी नही हैं, अतः मेरे धर्मगुरु नही हैं । राजा बड़ा लज्जित हुआ । मन में विचार किया कि रानी ठीक कहती है । अब मुझे इस धर्म के तत्व जानने चाहिए । यही से राजा को जैन धर्म के तत्वो को जानने की रुचि जागृत हुई ।

यद्यपि राजा श्रेणिक राजमहलों में रहता था फिर भी वह जंगल की खुशनुमा हवा लेने के लिए जाया करता था। वह यह बात समझता था कि ताजा हवा के बिना ताजा जीवन नही बनता । शास्त्र में विहार यात्रा शब्द का प्रयोग किया गया है । जैसी यात्रा होती है, वैसा ही उसका फल भी होता है । धर्म यात्रा, धन यात्रा, शरीर यात्रा आदि जुदी-जुदी यात्राओ का फल जुदा २ है । धर्म की यात्रा मे धर्म की और धन की यात्रा मे धन की रक्षा की जाती है । इसी प्रकार शरीर यात्रा का अर्थ शरीर की रक्षा करना है ।

आज शरीर यात्रा के नाम से ऐसे काम किये जाते

बीसवें अध्ययन में कही हुई कथा महापुरुष की है। इस कथा के वक्ता महा निर्ग्रन्थ हैं और श्रोता महाराजा हैं। इन महापुरुषो की बाते हम जैसो के लिये कैसे लाभदायी होगी, इसका विचार करना चाहिए। इस कथा के श्रोता राजा श्रेणिक का परिचय करते हुए कहा है:—

पभूय रयणो राजा सेणिओ मगहाहिवो।

मगधदेश का स्वामी राजा श्रेणिक बहुत रत्न वाला था। पहले रत्न का अर्थ समझ लीजिए। आप लोग हीरे, माणिक आदि को रत्न मानते हो लेकिन ये ही रत्न नहीं हैं, कुछ अन्य पदार्थ भी रत्न कहे जाते हैं। नरों में भी रत्न होते हैं, हाथी, घोडा आदि में भी रतन होते हैं और स्त्रियों मे भी रत्न होते हैं। रत्न का अर्थ बहुत व्यापक है। रत्न का अर्थ श्रेष्ठ भी होता है। जो श्रेष्ठ होता है, उसेभी रत्न कहा जाता है। राजा श्रेणिक के यहा ऐसे अनेक रत्न थे।

यह बात विचार करने लायक है कि शास्त्रकार ने श्रेणिक राजा के लिए अन्य विशेषणों का प्रयोग न करके "बहुत रत्नों का स्वामी था" ऐसा क्यो कहा। प्रभूत रत्न कहने का आशय यह है कि यदि कोई अनेक रत्नो का स्वामी हो तो भी उसका जीवन बेकार है। किन्तु जिसने अपने आतमरत्न को पहचान लिया है, उसका जीवन सार्थक है। यदि आत्मा को न पहिचाना तो सब रत्न व्यर्थ हैं। अन्य सब रत्न तो सुलभ हैं किन्तु धर्म-रत्न दुर्लभ है। धर्म रूपी रत्न के मिलने पर ही अन्य रत्न लेखे मे गिने जा सकते हैं, अन्यथा वे व्यर्थ हैं।

आप लोगों को सब से बड़ी सम्पदा मनुष्य-जन्म के

शास्त्र-विशारद गुरु से शास्त्र सुने जायं तब उनके खुले । यद्यपि शास्त्रों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय मुक्ति है तथापि मुक्ति के लिए उपयोगी जिन जिन बातों की आवश्यकता होती है उनका विशद वर्णन शास्त्रों मे है । लोग आम के फल खाते हो किन्तु बिना वृक्ष फल के नही होता । फल के लिए वृक्ष, डाली, पत्तों आदि पर भी ध्यान देना होगा । संवर और निर्जरा से ही आत्मा का कल्याण होता है, यह बात ठीक है किन्तु इन से सम्बन्धित बातो पर भी शास्त्रकारों ने विचार किया है । शरीर धर्म करणी करने में मुख्य साधन है और इसलिए राजा श्रेणिक विहार यात्रा घूमने के लिए निकला । ग्राम और शहर के भीतरी भाग की अपेक्षा उनके बाहर निकलने पर हवा बदल जाती है । ग्राम शहर की गन्दगी बाहर नही होती । शास्त्र में हवा के सात लाख भेद बताये गये हैं । प्रत्येक भेद के साथ प्रकृति का जुदा-जुदा सम्बन्ध है । समुद्री हवा और द्वीप की हवा का गुण अलग अलग है । इसी प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व, अधोदिशा की हवाओ के गुण-धर्म जुदा जुदा हैं और मनुष्य पशु पक्षियों पर उनका असर भी जुदा जुदा होता है । जो वायु-विशारद होता है वह हवा का रुख देखकर भविष्य की बाते कह सकता है । बिना सोचे यह कभी न कह डालना चाहिए कि शास्त्रों में तो केवल मुक्ति का ही वर्णन है ।

श्रेणिक राजा नगर से निकल कर विहार यात्रा के लिए मंडिकुक्षि नामक बाग मे आया । शास्त्र के कथनानुसार वह बाग नन्दनवन के समान था । शास्त्र में उसके वृक्ष, फल, फूल, पत्तों आदि का वर्णन है जो यथावसर

रूप में मिली हुई है। आप इसकी कीमत नही जानते। यदि आप इसकी कीमत जानते होते तो यह विचार अवश्य करते कि हम कंकड पत्थर के बदले जीवन रूपी रत्न क्यों खो रहे हैं? आप पूछेंगे कि हम क्या करें कि जिससे हमारा यह मनुष्य-जन्म रूप रत्न व्यर्थ न होकर सार्थक बन जाय। आपको रोज यही तो बताया जाता है कि यदि जीवन सफल करना है तो एक-एक क्षण का उपयोग करो। वृथा समय मत गमाओ। हर क्षण परमात्मा का घोष हृदय मे चलने दो। आत्मा को ईश्वर मय बनाने का प्रयत्न करना रत्न को सार्थक बनाना है।

फिर आप पूछेंगे कि 'आत्मा को परमात्मा कैसे बनाया जाता है' तो इसका उत्तर यह है कि ससार मे पदार्थ दो प्रकार के होते हैं १. काल्पनिक २ वास्तविक। पदार्थ कुछ और है और उसके विषय मे कल्पना कुछ और करली जाय, यह अज्ञान है। अज्ञान से की हुई कल्पना ही आपको गडबड में डाल देती है। कल्पना का पदार्थ दूसरा होता है और वास्तविक पदार्थ दूसरा। वास्तविक पदार्थ के विषय मे की गई कल्पना से उत्पन्न अज्ञान तब तक नहीं मिटता, जब तक कि वह वास्तविक देख न लिया जाय। दृष्टान्त के तौर पर समझिये कि किसी आदमी ने सीप में चादी

रह सकता । अमेरिका-निवासी लोग गौ को
समझ गये हैं। गौ शब्द का अर्थ पृथ्वी भी होता है।
जैसे सब का आधार है, वैसे गाय भी मनुष्य-जीवन
आधार है । यह बात ध्यान मे रख कर पृथ्वी का नाम
गौ रखा गया है । पुष्टिकारक घी और दूध दही गाय
ही मिलता है । आज हम कितने पतित हो गये हैं कि
महान उपकारक पशु की रक्षा करने में भी असमर्थ
गये हैं ।

जिनदास ने अपनी गायों की देखभाल करने
लिए सुभग नामक एक ग्वाल-पुत्र को रखा । सुभग
जिनदास आत्मतुल्य मानता था । सुभग प्रतिदिन गायो
जंगल में चराने ले जाता और संध्या को वापस ले
करता था ।

आज गायों के लिए गोचर-भूमि की चिन्ता
करें ? वकील लोग अन्य कामो के लिए तैयार हो जाते
मगर इस काम के लिये कौन तैयार हो ? वकील लोग
रखते ही नहीं । अतः उन्हे क्यों चिन्ता होने लगी ? जो
गाये रखते हैं, उन्हें फरियाद नही करना आता और जि
अपने हकों की रक्षा के लिये फरियाद करना आता है,
गाये ही नही रखते । आज गोचरभूमि की बहुत तंगी हो
रही है और इससे गोधन कमजोर हो रहा है। कुछ समय
पहिले तक जंगल प्रजा की चीज माना जाता था । प्रजा
को उसमें पशु चराने और लकड़ी आदि लाने का अधिकार
था । अब तो जंगलात कानून लागू हो गया है, अतः गायों
को खड़ी-रहने के लिये भी जगह नहीं है ।

छोडिये और अपने हृदय में परमात्मा के नाम का गुंजन होने दीजिये । यह सोचिये कि मैं नाक कान हाथ पैर आदि नही हूँ । ये तो पुद्गल के रूप हैं । मैं शुद्ध चेतनमय आनंद-घन मूर्ति हूँ । इस तरह सोचने से आपको जो मनुष्य जन्म रूप रत्न मिला हुआ है, वह सार्थक होगा ।

जब आप सोते हैं तब आंख, कान आदि सब बन्द रहते हैं, फिर भी स्वप्नावस्था में आत्मा देखता व सुनता है । स्वप्नावस्था मे इन्द्रियां सो जाती हैं और मन जागृत रहता है । इस अवस्था को ही स्वप्नावस्था कहते हैं । बाह्य इन्द्रियां सोई हुई हैं फिर भी स्वप्न में इंद्रियों का काम होता ही है । स्वप्न में मनुष्य नाटक सीनेमा देखता है और गाने भी सुनता है । इन्द्रियो के सोते रहते स्वप्नावस्था में इन्द्रियों का काम कौन करता है, इस बात का जरा ध्यानपूर्वक विचार कीजिये । इस बात का विवेक करिये कि आत्मा की शक्ति अनन्त है लेकिन भ्रमवश अथवा अज्ञान या मिथ्याधारना के कारण वह शरीरादि को अपना मान बैठा है । आत्मा का यह भ्रम वास्तविक पदार्थ के देख लेने से तुरन्त मिट सकता है । जैसे सीप को देखते ही चादी का भ्रम मिट जाता है । जड़ शरीर और चेतन आत्मा का यह बेमेल सम्बन्ध क्यों और कैसे है, इस बात पर विचार करिये । विचार करने से सद्ज्ञान प्राप्त होगा । विचार करके जो पदार्थ हमारे नही हैं उनको छोड़ने की कोशिश कीजिये । जब शरीर भी हमारा अपना नही हो सकता तो धन दौलत और कुटुम्बादि हमारे कब हो सकते हैं ? अपने पराये का वास्तविक ज्ञान ही मोक्ष की कुंजी है । आत्मा मे अन्नत शक्तियां रही हुई हैं । यह बिना आंख के देखता और बिना कान के सुनता है, जीभ के बिना

पानी होकर मिठास देगी । मनुष्य को व्यवहार में ऐसा बनना चाहिए ।

जिनदास, सुभग के साथ इसी प्रकार का वर्ताव कर था । वह उसे सुधारने का प्रयत्न करता था । सुभग उसे अपने पिता के समान मानता था और कभी जिनदास को धर्म क्रियाएं करते हुए देखा करता था। अभी धर्म के समीप नही आया है। एक दिन वह जंगल में चरा रहा था कि वहां एक महात्मा को वृक्ष के नीचे लगा कर बैठे हुए देखा । महात्मा और सुभग का किस प्रकार हुआ यह बात अवसर आने पर बताई अभी तो यह मे ध्यान रखा जाय कि महात्माओं के दर्शन कैसा चमत्कारिक अवसर होता है । मनुष्य कुछ कुछ बन जाता है ।

राजकोट

१४–७–३६ का०

रसास्वाद करता है। स्वप्न में न इन्द्रिया हैं और न पदार्थ; फिर भी आत्मा कल्पना के द्वारा सब कुछ अनुभव करता ही है। स्वप्न मे आत्मा गध रस स्पर्श की कल्पना करके आनंद मानता है। क्रोध लोभ आदि विकारो के वश मे भी होता है। स्वप्न मे सिंह आदि हिंसक प्राणियो को देखकर भय-भीत भी होता है, दु:खी भी होता है और सुखी भी। कोई मुझे काट रहा है तथा कोई मेरे शरीर पर चन्दन का लेप कर रहा है आदि भी अनुभव होता है।

स्वप्न की सब घटनाओ से आत्मा की शक्ति का पता लगता है कि बिना भौतिक इन्द्रियो की सहायता के भी वह किस प्रकार सब काम चला लेता है। इसका अर्थ यह हुआ कि भौतिक पदार्थों के साथ आत्मा का कोई तालुक नही है। जो सम्बन्ध है वह वास्तविक नही है किन्तु हमारी गलत समझ के कारण है। 'मैं इस तरह की कल्पना की चीजो मे आत्मा को न डालू किन्तु परमात्मा मे अपने आपको लगादू' यह विचार करने से मनुष्य-जीवन रूपी रत्न की सार्थकता है।

प्रत्येक काम उसके स्वरूप के अनुसार ठीक होन चाहिये। उद्देश्य कुछ और हो और काम कुछ अन्य करते हों तो साध्य सिद्ध नही हो सकता। ऐसा करने से 'बनाने गये गणेश और बन गये महेश' वाली कहावत चरितार्थ ती

ा जाने से वह भयभीत हो गया। चोर का साहस ही
तना होता है ? मालिक के जाग जाने पर चोर की ठह-
की हिम्मत नही रहती। राजा को जागा हुआ देखकर
र ने सोचा कि यदि मैं पकडा जऊंगा तो मारा जाऊंगा।
ः वह चोर वहां से भागा। राजा ने भागते हुए चोर को
ा लिया। राजा ने सोचा—यदि मेरे महल मे से चोर बिना
डे भाग जायगा तो मेरी वदनामी होगी। अतः वह चोर
पीछे-पीछे दौड़ा। आगे चोर भागता जाता था और उसके
छे राजा भी दौड़ता जाता था। राजा को चोर के पीछे
डता देखकर सिपाही आदि भी उसके पीछे दौडने लगे। आगे
गे चोर, उसके पीछे राजा और राजा के पीछे सिपाही। अन्त
चोर थक गया और विचारने लगा कि राजा उसके समीप
ही पहुंच रहा है, यदि मैं कपडा जाऊंगा तो जानकी खैरि-
ा नही है, मगर बचने की भी कोई गुंजाइश नही है।
गते हुए ही उसने आगे करने लायक बात तय करली।
स ही श्मशान आ गया था। उसने सोचा कि इस समय
के मुर्दा बन जाना चाहिए। मुर्दा बन जाने से राजा मेरा
ा बिगाड़ सकेगा ? मुर्दा बन जाने पर मुझे जिन्दा आदमी
कोई काम न करना चाहिये। मुझे पूरी तरह मुर्दा बन
ना चाहिए। स्वाग करना तो हूबहू करना चाहिए।

यह सोचकर वह धडाम से श्मशान में जाकर गिर
ा। उसने अपनी नाडियों का ऐसा संकोच कर लिया कि
नो साक्षात् मुर्दा ही हो। राजा उसके पास आ गया और
ने लगा कि यह चोर पकड लिया गया है। इतने में
पाही लोग भी आ गये और कहने लगे कि महाराज, यह
म हमारा है। इस काम के लिये आपको कष्ट करने की

जरूरत न थी। चोर आपके भय से गिर भी पडा है और मर भी गया है। राजा ने सिपाहियो से कहा कि अच्छी तरह तपास करो, कही कपट करके तो नहीं पडा है। सिपाही लोग चोर को खूब हिलाने लगे। वह मुर्दे के समान हिलाने से इधर उधर होने लगा।

मनुष्य को आपत्ति भी महान् शिक्षा देती है। आपत्ति मनुष्य को उन्नत बनाती है। "रगलाती है हिना पत्थर पै घिस जाने के बाद" मेहदी को जितना घिसा जाय, उतना उसका रग ज्यादा निखरता है। मनुष्य भी जितनी आपत्तिया सहन करता है उतना अच्छा आदमी बनता है। राम को यदि वनवास करने की आपत्ति न उठानी पडती तो आज उन्हे कोई नही जानता। भगवान् महावीर यदि उपसर्ग और परिषह न सहते तो कौन उसका नाम लेता? कौन उन्हे महावीर कहता? सीता, मदनरेखा, अजना, सुभद्रा आदि की शोभा आपत्ति सहन करने के कारण ही है। अतः आपत्ति से घबडाना नही चाहिए किन्तु धैर्यपूर्वक उसका सामना करना चाहिए।

राजा ने पुनः सिपाहियों से कहा कि, घबडाओ नहीं धैर्यपूर्वक परीक्षा करो कि, वास्तव मे, यह मर गया